समरथ

जुलाई – अगस्त 2005 | नई दिल्ली

नाहि तो जनम नसाई

समरथ के पिछले तमाम अंकों में हमने संपादकीय में कविताओं द्वारा अपनी बात रखी। प्रस्तुत अंक में इब्ने इंशा का एक व्यंग्य है जो कि किसी भी अर्थ में कविता से कम नहीं। दरअसल यह व्यंग्य एक कालजयी कविता है जो कि हर काल की बात करती है। हर काल जो वर्तमान काल में एक साथ विद्यमान है। गुजर चुके काल वर्तमान में नई शक्लों में दिखते हैं। नई शक्लें जो हम पहचानते नहीं, इसीलिए इन पर नज़र भी नहीं जाती। ज़रा पत्थर के युग पर नज़र डालिए, शायद इसकी वर्तमान शक्ल आप पहचान जाएं। अब ज़रा धातु के युग को देखिए, शायद कोई जानी पहचानी शक्ल आपको याद आ जाए। इसी तरह अन्य कालों को देखते जाइए और सोचिए कि हम वर्तमान में किस काल का हिस्सा हैं। गुज़रा इतिहास वर्तमान में क्या कर रहा है ? और इस रूप में ? पर हमारा वर्तमान है क्या ? जब वर्तमान ऐसा है तो भविष्य की दिशा कौन सी है ? जवाब हम सबको मिलकर ढूंढना है, पर रुकना जवाब पर नहीं है, सोचना यह भी है कि हम कहां पहुंचना चाहते हैं और कैसे ?

तारीख़ (इतिहास) के चन्द दौर

इब्ने इंशा

राहों में पत्थर।
जलसों में पत्थर।
सीनों में पत्थर।
अक़्लों में पत्थर।
आस्तानों में पत्थर।
दीवानों में पत्थर।
पत्थर ही पत्थर।
यह ज़माना पत्थर का ज़माना कहलाता है।

देगें ही देगें।
चमचे ही चमचे।
सिक्के ही सिक्के।
सोना ही सोना।
पैसे ही पैसे।
चाँदी ही चाँदी।
यह ज़माना धातु का ज़माना कहलाता है।

एक और ज़माना है आयरन एज़।
यानी लोहे का ज़माना।
लोहा वह धातु है,
जिसका सब लोहा मानते हैं।
हल का फल भी लोहा।
कारखाने की कल भी लोहा।
लोहा मक़्नातीस[1] बन जाता है
तो चाँदी तक को खींच लेता है।
सौ सुनार की, एक लुहार की।
सोने वाले लोहे वालों से डरते हैं।
लेकिन कोई कहाँ तक रुकवायेगा।
हमारे यहाँ भी लोहे का ज़माना आयेगा।
कच्चा लोहा और किसी काम का नहीं
बस उससे आदमी बनाते हैं।
जो मरदे–आहन (लौह पुरुष) कहलाते हैं।
उनको ज़ंग लग जाता है,
बल्कि खा जाता है।
फिर भी लोग घूरे पर से उठा लाते हैं।

ज़िन्दाबाद के नारे से जलाते हैं।

ये और दौर है।
लोग नंगे घूमते हैं।
नंगे नाचते हैं।
नंगे क्लबों में जाते हैं।
एक–दूसरे को जलसों में नंगा करते हैं।
अवाम तक के कपड़े उतार लेते हैं।
बल्कि खाल खींच लेते हैं।
खालों से ज़रे–मबादला[2] कमाते हैं।
गोश्त कच्चा खा जाते हैं।
ये ज़माना कब्ल–अज़तारीख़[3] है।

मिलावट की सनअत।[4]
रिशवत की सनअत।
कोठी की सनअत।
पकौड़ी की सनअत।
हलवे की सनअत।
मांडे की सनअत।
बयानों और नारों की सनअत।
तावीज़ों की और गण्डों की सनअत।
ये हमारे यहाँ का सनअती दौर है।

काग़ज़ के कपड़े।
काग़ज़ के मकान।
काग़ज़ के आदमी।
काग़ज़ के जंगल।
काग़ज़ के शेर।
ज़रा नम हो तो सब के सब ढेर।
काग़ज़ के नोट।
काग़ज़ के ओट।
काग़ज़ का ईमान।
काग़ज़ के मुसलमान।
काग़ज़ के अख़बार।
और काग़ज़ के ही कालमनिगार।

ये सारा काग़ज़ का दौर है।
अब इस आख़िरी दौर को देखिये।
पेट रोटी से खाली।
जेब पैसे से खाली।
बातें बसीरत[5] से खाली।
वादे हक़ीकत से खाली।
दिल दर्द से खाली।
दिमाग़ अक्ल से खाली।
शहर फ़रज़ानों[6] से खाली।
ज़ंगल दीवानों से खाली।
ये खलाई दौर (अन्तरिक्ष युग) है।

'उर्दू की आखिरी किताब' से

---

1. चुम्बक **2.** विदेशी मुद्रा **3.** इतिहास पूर्व **4.** व्यापार **5.** समझदारी **6.** बुद्धिमानों

इस व्यंग्य के बाद ज़रा देखें महान कथाकार सआदत हसन मन्टो अपनी कहानियों के बारे में क्या कहते हैं। शायद इससे इब्ने इंशा की बात को और भी ज़्यादा मज़बूती मिले :

''ज़माने के जिस दौर से हम इस वक़्त गुज़र रहे हैं, अगर आप उससे नावाक़िफ़ हैं तो मेरे अफ़साने पढ़िए। अगर आप इन अफ़सानों को बर्दाश्त नहीं कर सकते तो इसका मतलब यह है कि यह ज़माना नाक़ाबिले–बर्दाश्त है। मुझमें जो बुराइयाँ हैं, वो इस अहद (दौर) की बुराइयाँ हैं। मेरी तहरीर (लेखन) में कोई नुक़्स नहीं। जिस नुक़्स को मेरे नाम से मंसूब (जोड़ा) किया जाता है, दरअसल मौजूदा निज़ाम (व्यवस्था) का नुक़्स है–मैं हंगामापसंद नहीं। मैं लोगों के ख़यालातों–जज़्बात में हेजान (उथल–पुथल) पैदा करना नहीं चाहता। मैं तहज़ीबो–तद्दुन (संस्कृति और सभ्यता) की और सोसायटी की चोली क्या उतारूँगा, जो है ही नंगी। मैं उसे कपड़े पहनाने की कोशिश भी नहीं करता, इसलिए कि यह मेरा काम नहीं··· लोग मुझे सियाह क़लम कहते हैं, लेकिन मैं तख़्ता–ए–सियाह (ब्लैक बोर्ड) पर काली चाक से नहीं लिखता, सफ़ेद चाक इस्तेमाल करता हूँ कि तख़्ता–ए–सियाह की सियाही और ज़्यादा नुमायाँ (स्पष्ट) हो जाए। यह मेरा खास अंदाज़, मेरा ख़ास तर्ज़ है जिसे फ़हशनिगारी (अश्लीलता), तरक़्क़ीपसंदी और ख़ुदा मालूम क्या–क्या कुछ कहा जाता है–लानत हो सआदत हसन मंटो पर, कमबख़्त को गाली भी सलीक़े से नहीं दी जाती···''

सआदत हसन मंटो

सुप्रीम कोर्ट और धर्मनिरपेक्षता

(सुप्रीम कोर्ट के कुछ फैसलों पर एक नज़र)

भारतीय संविधान के तहत भारत एक धर्मनिरपेक्ष और बहुलतावादी देश है। धर्मनिरपेक्षता का आधार है राज्य की हर धर्म के प्रति तटस्थता। सामाजिक सुधारों को गति देने के लिये संविधान धार्मिक कर्मकाण्डों में राज्य को हस्तक्षेप की अनुमति देने के साथ–साथ हर नागरिक को धार्मिक स्वतंत्रता की भी गारण्टी देता है। 1976 में संविधान के 42वें संशोधन ने धर्मनिरपेक्षता को हमारे राजतंत्र का एक मूलभूत अंग करार दिया। क्योंकि संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को सिर्फ धर्म के प्रति राज्य की तटस्थता के रूप में ही परिभाषित किया इसलिये धर्मनिरपेक्षता को परिभाषित करने का काम सुप्रीम कोर्ट पर छोड़ दिया गया। सबसे पहले सुप्रीम कोर्ट ने 1962 में **सरदार तहेरूद्दीन सैयदना साहेब बनाम स्टेट ऑफ बॉम्बे** में जस्टिस आयंगर ने संविधान की धारा 25 और 26 की व्याख्या करते हुए कहा 'संविधान की धारा 25 और 26 में धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का सिद्धांत निहित है..... इसके अलावा ये दोनों धाराएं भारतीय लोकतंत्र के धर्मनिरपेक्ष चरित्र पर भी बल देती हैं। संविधान सृष्टाओं ने इसी धर्मनिरपेक्षता को भारतीय संविधान का मूलभूत आधार माना था।' 1972 में सुप्रीम कोर्ट की पूरी 13 जजों की संवैधानिक न्यायपीठ ने **केशवानंद भारती बनाम स्टेट ऑफ केरल** केस में धर्मनिरपेक्षता को देश का मूलभूत कानून करार दिया। जस्टिस सी. जे. सीकरी ने 'भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को भारतीय संविधान के बहुआयामी चरित्र का हिस्सा करार दिया। इस फैसले ने धर्मनिरपेक्षता को भारतीय संविधान की असंशोधनीय चरित्र भी बताया। पर 1974 में ही **अहमदाबाद सेंट जेवियर कॉलेज बनाम स्टेट ऑफ गुजरात** में सुप्रीम कोर्ट अपने मत में अनिश्चित था। जस्टिस मैथ्यू और जस्टिस चंद्रचूड़ ने अपने फैसले में कहा 'भारतीय संविधान ने चर्च और राज्य के बीच कोई ठोस दीवार नहीं खड़ी की है.....भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता का मतलब है सिर्फ 'जियो और जीने दो की प्रवृति को बढ़ावा देना।' 1975 में **जियाऊद्दीन बुरूहनुद्दीन बुखारी बनाम ब्रजमोहन रामदास मेहरा** में जस्टिस बेग ने कहा कि हमारे संविधान के सृष्टा एक धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र स्थापित करना चाहते थे। इस फैसले ने राज्य को तटस्थ और पक्षपातरहित भूमिका अपनाने के लिये कहा और कहा कि ऐसे कानून या सीमाएं न बनायी जाएं जो किसी धर्म विशेष अनुयायियों के विरोध में जायें। **इन्द्रा साहनी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** 1992 केस में जस्टिस कुलदीप सिंह ने कहा कि धर्मनिरपेक्षता एक सशक्तिशील (कोहेसिव), एकीकृत और जातिविहीन समाज की संरचना की अपेक्षा करता है और इस तरह जस्टिस कुलदीप सिंह धर्मनिरपेक्षता को धर्म के दायरे से आगे ले गये। इन सभी फैसलों से साफ निष्कर्ष निकलता है कि सुप्रीम कोर्ट ने धर्मनिरपेक्षता को देश का एक मूलभूत कानून करार दिया है और धर्म के प्रति राज्य की तटस्थता और सहिष्णुता पर ज़ोर दिया है। मतलब न्यायपालिका इस पर एक मत है कि राज्य को धर्म के प्रति तटस्थ और सहिष्णु रहना चाहिए पर न्यायपालिका में धर्म और राजनीति अलग–अलग होने चाहिये इस सिद्धांत पर मतभेद हैं। **एस. आर. बोम्मई बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** 1994 में नौ जजों की न्यायपीठ ने एक बार फिर से दोहराया कि धर्मनिरपेक्षता हमारे राज्यतंत्र की मूलभूत संरचना का अविभाज्य हिस्सा है। ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह कि सुप्रीम कोर्ट ने इस फैसले में साफ–साफ कहा कि धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत धर्म और राजनीति को अलग–अलग मानता है। जस्टिस बी.पी. जीवन रेड्डी ने साफ कहा कि राज्य के मामलों में धर्म निरर्थक है और उसकी कोई भूमिका नहीं है। इस फैसले ने धर्मनिरपेक्षता को सच में बहुआयामी और असली मायनों में परिभाषित किया। इस फैसले ने बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद उत्तर प्रदेश., राजस्थान, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश की भाजपा शासित सरकारों की बर्खास्तगी को संवैधानिक और कानूनन ठीक करार दिया। इस फैसले में आगे कहा गया कि वोटों को बटोरने के लिए किसी पार्टी द्वारा जाति और धर्म का इस्तेमाल असंवैधानिक और भ्रष्टाचार माना जायेगा। उस समय, आर. एस.एस. से, जो उस वक्त एक प्रतिबंधित राजनीतिक संगठन था, भाजपा के कई शीर्षस्थ नेता जुड़े थे, और भाजपा का 'कारसेवकों' को समर्थन साफ दिखाता है कि कैसे राजनीति के लिये धर्म का इस्तेमाल हुआ। इस फैसले ने 13 जजों को न्यायपीठ केशवानन्द के केस के फैसले को एक

व्यावहारिक रूप दिया। इस फैसले ने साफ–साफ आदेश दिया कि कोई भी सरकार जो सांप्रदायिकता के आधार पर राज करेगी वो अपने आप को संविधान की धारा 356 के तहत बर्खास्तगी के दायरे में ले आती है।

इस फैसले ने ये भी कहा कि भारत में धर्मनिरपेक्षता सहिष्णुता पर आधारित है। जस्टिस अहमदी ने कहा धर्मनिरपेक्षता सहिष्णुता के सिद्धांत पर आधारित है। कोर्ट ने कहा धर्म हर किसी के व्यक्तिगत विश्वास, आस्था और पूजा का विषय है; धर्मनिरपेक्षता भौतिक धरातल पर होती है। धर्मानुकरण में स्वतंत्रता और सहिष्णुता का मतलब सिर्फ इतना है कि हर किसी का आध्यात्मिक जीवन और धर्मनिरपेक्ष जीवन अलग–अलग हैं। धर्मनिरपेक्षता राज्य के कार्यकलापों में आती है। इस तरह देखा जाये तो धर्मनिरपेक्षता का मतलब है सभी धर्मों को एक समान आदर और साथ–साथ ये कुछ हद तक धर्म और राज्य को भी अलग–अलग मानती है।

दुर्भाग्य से बोम्मई केस का ये तर्क बाद में आने वाले फैसलों में नहीं पाया गया। **इस्माइल फारूखी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया 1994,** राम जन्मभूमि के केस में सुप्रीम कोर्ट हिंदू धार्मिक ग्रंथों पर आधारित धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा का समर्थन करता नज़र आता है। जस्टिस वर्मा ने, चीफ जस्टिस वेंकटचलैय्या और जस्टिस रे की तरफ से फैसला सुनाते हुए, 'सर्वधर्म समभाव' को–सब धर्मों के लिये सहिष्णुता को धर्मनिरपेक्षता बताया। उनके मुताबिक इस परिभाषा की बुनियाद में यजुर्वेद, अथर्ववेद, ऋग्वेद, और अकबर की दीन–ए–इलाही हैं। इस फैसले में सुप्रीम कोर्ट ये मानता नज़र आता है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता इसलिये जीवित है क्योंकि हिंदू सहिष्णु हैं और हिंदू धर्म को मानते हैं। ये फ़ैसला सरासर अल्पसंख्यकों के हितों के खिलाफ है।

इसके अलावा हाल ही में एन.सी.ई.आर.टी. के इतिहास पुर्नलेखन के केस में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सभी धर्म समान हैं। बहुमत का फैसला था कि हर धर्म का सार एक है, सिर्फ अनुकरण अलग है। ये फैसला साफ तौर पर सहिष्णुता के उसूल के खिलाफ है क्योंकि ये अपने इरादों में समावेशनीय और परिचायक है और व्यक्ति को किसी तरह की स्वायत्तता और स्वतंत्रता नहीं देता। सब जानते हैं कि भारत बहुधर्मीय, बहुसांस्कृतिक, बहुजातीय, और बहुसमुदायी देश है इसलिये सब का अस्तित्व बनाये रखने के लिये हर किसी का सम्मान और आदर आवश्यक है। इस तरह की परिभाषा बजाय विविधता को बढ़ाने के एक तरह की समानता स्थापित करना चाहती है। इस तरह की परिभाषा बहुसंख्यक हितों की रक्षा करती है न कि अल्पसंख्यकों की। इन फैसलों को साफ–साफ तौर पर हिंदुत्ववादी फैसले कहा जा सकता है। कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि ये दोनों फैसले भा.ज.पा.–राजग के राज के दौरान आये। ज़ाहिर है भा.ज.पा.–राजग ने अपनी विचारधारा से प्रतिबद्ध जजों की नियुक्ति की।

न्यायपालिका, राज्य और धर्म

न्यायपालिका द्वारा दिये गये हिंदुत्ववादी फैसलों ने कन्फयूज़न को थोड़ा बढ़ा दिया है। **जियाऊद्दीन बुखारी बनाम मेहरा** (1975) में सुप्रीम कोर्ट ने हाईकोर्ट के फैसले को अनुमोदित करते हुए बुखारी के महाराष्ट्र विधानसभा में निर्वाचन को इस बिना पर अवैध ठहराया कि क्योंकि उन्होंने मुसलमानों से यह कहकर वोट मांगा था कि वो खुद मुस्लिम थे। फैसले में कहा गया कि धर्म को राजनीतिक उद्देश्यों के लिये इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। **रमेश यशवंत प्रभु बनाम प्रभाकर के. खुन्टेस** (1996) के फैसले के आधार पर कोर्ट ने कहा कि किसी को अपने आप को इस बिना पर उम्मीदवार बनना क्योंकि वो हिंदू है, एक भ्रष्ट आचरण माना जायेगा और ये आचरण भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ है। चुनावी भाषण का सार इस बात को तय करेगा कि वो धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ है या नहीं। ठाकरे ने हिंदुओं को वोट देने के लिये अपील की थी क्योंकि वो खुद हिंदू थे और मुसलमानों के खिलाफ उनके भाषण में जो भाषा इस्तेमाल की गयी इस सब को 1990 में सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की न्यायपीठ ने भ्रष्ट आचरण करार दिया था। इसी तरह शिवसेना के **सूर्यकान्त महादिक** (1996) द्वारा हिंदुत्व को बचाने के लिये शिवसेना को वोट देने की अपील भी एक भ्रष्ट आचरण माना गया क्योंकि ये अपील एक हिंदू द्वारा एक हिंदू त्योहार के दौरान एक हिंदू मंदिर में की गयी थी। इस सबके बावजूद भी **प्रभु बनाम खुन्टेस** में सुप्रीम कोर्ट का मानना था कि हिंदुत्व एक जीवन जीने की पद्धति है, एक मनःस्थिति है और इसको एक कट्टरवादी हिंदू धर्म के नज़रिये से नहीं देखना चाहिये। कोर्ट ने कहा '' 'हिंदुइज़्म' या 'हिंदुत्व' शब्द संकीर्ण नज़रिये से नहीं समझने चाहिये। इनको सिर्फ हिंदू धार्मिक आचरणों से नहीं जोड़ना चाहिये न ही इनको भारतीय जन की संस्कृति, जो भारतीय जन की जीवन पद्धति है, से अलग करके समझना चाहिये।'' हिंदुत्व, इस फैसले में, भारतीयता या समान सांस्कृतिक प्रगति का पर्यायवाची हो गया जिसका मतलब था बाकी सभी संस्कृतियों और भारतीय संस्कृति में फर्क खत्म हो जायेंगे और सिर्फ एक ही संस्कृति बची रहेगी।

ऊपर लिखे गये फैसलों से साफ साबित होता है कि हिंदुत्व का मतलब एकसमानता है न कि बहुलतावाद और विविधता।

ये अपने आप में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिये बहुत ही घातक है। टी. बी. हैनसन के मुताबिक हिंदुत्व की विचारधारा का मतलब है हिंदू बहुसंख्यकों द्वारा राज। ये एक अजीब शुद्धतावादी, ब्राह्मणवादी विचारधाराओं का मिश्रण है जो आर.एस.एस. और उसके अन्य परिवार की विचारधारा की विशिष्टता है, लक्षण है। हिंदुत्व को एक समान संस्कृति के विकास के रूप में देखना जिसमें और सभी दूसरी संस्कृतियों की विविधता और भेद नहीं रहेंगे, ये अपने आप में संवैधानिक कानून के खिलाफ है जिसके तहत हर संस्कृति की अपनी पहचान है, उसका अपना सम्मान है, अपनी जगह है। ऑस्टिन का मानना है कि हिंदुत्व को भारतीयता की एक शर्त मानना अपने आप में सबसे ज्यादा भद्दापन है क्योंकि सबसे पहले ये हिंदुइज़्म को एक अखण्ड ढांचा मानता है जब कि सच यह है कि हिंदुइज़्म में स्थानीय देवता और देवियाँ हैं। दूसरी बात हिंदुइज़्म की ये परिभाषा भारत की विविध और बहुल संस्कृति और इतिहास को नकारती है, दूसरे शब्दों में एक पागल राष्ट्रवाद।

मनोहर जोशी (1996) के केस में सुप्रीम कोर्ट ने कहा 'कि महाराष्ट्र में पहले हिंदूराष्ट्र की स्थापना का वादा धर्म के नाम पर वोट मांगना नहीं माना जा सकता। ये वादा सिर्फ एक उम्मीदवार की अभिव्यक्ति है।' ये साफ–साफ धर्मनिरपेक्षता के सहिष्णुता के मापदण्डों के खिलाफ है, संविधान के खिलाफ है क्योंकि कोई भी हिंदूराष्ट्र तटस्थ नहीं हो सकता। **राम कापसे बनाम एच. आर. सिंह** (1995) केस में भी न्यायपालिका डगमगाती नज़र आयी। इस केस में तीन जजों की न्यायपीठ ने हाईकोर्ट के उस फैसले को रद्द कर दिया गया जिसमें हाईकोर्ट ने कहा था कि भाजपा के राम कापसे लोकसभा की अपनी सीट गंवा सकते हैं क्योंकि साध्वी रितम्भरा ने उनकी उपस्थिति में उनकी चुनावी सभा में सांप्रदायिक उन्माद भड़काने वाला भाषण दिया था। सुप्रीम कोर्ट ने राम कापसे को दोबारा सांसद बना दिया क्योंकि उन्होंने (कापसे) कहा कि वो उस उन्मादी अपील के खिलाफ हैं और उसका हिस्सा नहीं हैं। कापसे आज भी अंडमान निकोबार के गवर्नर हैं।

इस तरह से देखा जाये तो बोम्मई केस में सुप्रीम कोर्ट राज्य और धर्म को अलग–अलग रखता है जबकि सुप्रीम कोर्ट के हिंदुत्ववादी फैसले धर्म के नाम पर अपील को बरकरारता देते हैं, संदर्भ से अलग रखकर इन अपीलों को संस्कृति या इतिहास को पुर्नपरिभाषित करने की अपीलें मानते हैं। इस नज़रिये से कोर्ट सिर्फ हिंदू भारत के प्रतीकों को, भारतीय संस्कृति और इतिहास के प्रतीक मानने लगे हैं। ये अपने आप में चिंतनीय है।

सुप्रीम कोर्ट और धर्म

ये बड़े ताज्जुब की बात है कि न्यायपालिका हमें बताती है धर्म क्या है ? सुप्रीम कोर्ट का मानना है कि 'भारत में धर्मनिरपेक्षता की समस्या हैः यह तय करना कि धर्म संबंधित मामले क्या हैं और कौन से मामले धर्म से संबंधित नहीं हैं...धर्म को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है और यह एक ऐसा शब्द है जिसकी कोई संकीर्ण परिभाषा नहीं हो सकती'' **(मद्रा बनाम दिरूर मठ 1954)** सुप्रीम कोर्ट ने धर्म की परिभाषा को सिर्फ व्यक्ति और उसके रचयिता के बीच के सम्बन्धों और उसकी पूजा तक ही नहीं सीमित रखा क्योंकि बुद्धिज़्म और जैन धर्म एक किसी सर्वशक्तिमान में विश्वास नहीं रखते। **एस. पी. मित्तल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** (1983) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि धर्म एक विश्वास का विषय है; ईश्वर में विश्वास कोई धर्म नहीं बन जाता। धर्म में विश्वास करने वालों के लिये सिर्फ एक नैतिक व्यवहार संहिता ही नहीं, पर साथ में पूजा अर्चना के तरीके, कर्मकाण्ड और अन्य आयोजन भी शामिल हैं। **ए. एस. नारायण दीक्षीतुलु बनाम आंध्र प्रदेश** 1996 के फैसले में कहा गया कि संविधान ने धर्म को एक व्यक्तिगत मामला माना है। इस तरह धर्म, आस्थाओं और विचारों का सम्मिश्रण है जो धर्मावलम्बियों के लिये उनके आध्यात्मिक जीवन के लिये सहायक है।

सुप्रीम कोर्ट के ज़्यादातर फैसले इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सिर्फ मूलभूत धार्मिक प्रथाओं को ही संरक्षण प्रदान हो सकता है और कोर्ट यह तय करेगा कि मूलभूत धार्मिक प्रथाएं कौन–कौन सी हैं। इन फैसलों ने राज्य को धार्मिक मामले में लगातार दखल देने की इजाज़त दे दी है। कोर्ट्स को यह तय करने के अधिकार ने, कि क्या धार्मिक है और क्या धार्मिक नहीं है, यह तय करने का अधिकार दे दिया। राज्य का नियंत्रण आज और भी ज़्यादा प्रतिबंधक हो गया है हालांकि संविधान धार्मिक स्वतंत्रता और अपने–अपने धार्मिक मामलों के प्रबंधन का अधिकार देता है। एक विद्वान के अनुसार राष्ट्रीय संस्कृति और समान नागरिकता के नाम पर राज्य ने धार्मिक सहिष्णुता, सामुदायिक और सांस्कृतिक विविधता की अवहेलना की है। सच तो यह है कि इस फैसले के मुताबिक क्या धार्मिक है और क्या धार्मिक नहीं है, अब धार्मिक समुदाय या कोई व्यक्ति नहीं बल्कि कोर्ट तय करेगा। इसके साथ–साथ धर्मनिरपेक्ष राज्य की धार्मिक संगठनों को नियंत्रण करने की वैद्यता पर भी प्रश्न चिन्ह लग गया है और इस पर भी कि किस हद तक राज्य का हस्तक्षेप स्वीकार्य है। यह बात ठीक है कि धर्मनिरपेक्ष राज्य को धार्मिक इकाईयों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और हस्तक्षेप की सीमा सिर्फ देख–रेख की हद तक ही होनी

चाहिये पर राज्य सामाजिक सुधारों में ज़रूर हस्तक्षेप कर सकता है। राज्य को प्रतिबंधित करने की मुश्किल, धर्म को धर्मनिरपेक्षता से अलग करना और न्यायपालिका के परस्पर विरोधी और असंगत फैसलों की वजह से आज धर्मनिरपेक्षता कमज़ोर हुई है, उसकी अवहेलना हुई है।

पर्सनल लॉ और न्यायपालिका

पर्सनल लॉ का विषय धर्म निरपेक्षता की एक और विशिष्टता बताता है – बहुलतावाद के परिप्रेक्ष्य में अल्पसंख्यकों का संरक्षण। यह बात साफ तरह से समझ लेनी चाहिये कि धर्मनिरपेक्षता अल्पसंख्यकों के धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों के संरक्षण के बिना बहुसंख्यकवाद को स्थापित करता है। अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने के लिये विशेष उपाय करने की ज़रूरत है। पर्सनल लॉ के पक्ष और विरोध में अभिव्यक्त किये गये मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि पर्सनल लॉ पर संविधान का रुख काफी अस्पष्ट है। पर्सनल लॉ में संशोधन के खिलाफ जो तर्क दिये जाते हैं वे सब धर्म और आस्था के मूलभूत अधिकार पर आधारित हैं जबकि पर्सनल लॉ में संशोधन का मत इस पर आधारित है कि कानून से और कानून के सामने सब नागरिकों को समान संरक्षण मिले। पर्सनल लॉ के सवाल के साथ अधिकारों की श्रेणीबद्धता का सवाल भी जुड़ा है – क्या पर्सनल लॉ के तहत अधिकार समानता के मूलभूत अधिकार से ऊपर है ?

1954 के सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मुताबिक (**स्टेट ऑफ बॉम्बे बनाम नरासु अप्पा माली**) पर्सनल लॉ, जारी कानूनों के दायरे में नहीं आता और इसलिये मूलभूत अधिकारों के खिलाफ होने के बाद भी पर्सनल लॉ अवैध नहीं हो जाता। सुप्रीम कोर्ट का ऐसा मानना था कि धार्मिक कानून और ग्रंथ, कानून की हद से बाहर हैं। 1985 में शाहबानो के केस में सुप्रीम कोर्ट ने अपने 1954 के फैसले को बदल दिया और पर्सनल लॉ में सुधार लाने की भूमिका अपनायी। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के मुताबिक सी.पी.सी. की धारा 125 तलाक के मामले में मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) से ऊपर है। इस फैसले को सुनाते हुए सामाजिक न्याय को बढ़ाने के लिये सुप्रीम कोर्ट ने समान नागरिक संहिता बनाने पर भी ज़ोर दिया। सुप्रीम कोर्ट ने राज्य को निर्देश दिये कि वो समान नागरिक संहिता बनाये। **सरला मुदगल अध्यक्ष कल्याणी और अन्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** (1995) में एक बार फिर सुप्रीम कोर्ट ने समान नागरिक संहिता की ज़रूरत को दोहराया। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि राष्ट्रीय एकता के लिये समान नागरिक संहिता ज़रूरी है। जुलाई 2003 में चीफ जस्टिस खरे ने **जॉन वल्लमात्तोम और अनर एस. बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** फैसला सुनाते हुए खेद प्रकट किया कि राज्य ने अब तक संविधान की धारा 44 के मुताबिक समान नागरिक संहिता नहीं बनायी। ये बात याद रखने लायक है कि शाहबानो केस में सुप्रीम कोर्ट ने सामाजिक सुधारों का नज़रिया अपनाया और दूसरे दो केसों में राष्ट्रीय एकीकरण का नज़रिया अपनाया। इस संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता का मतलब होगा एक संस्कृति न कि बहुसंस्कृति और एक संस्कृति का मतलब होगा बहुसंख्यकवाद। एक निष्कर्ष औरः ये कहा जाता है कि धर्म निरपेक्षता का मतलब है सर्वधर्मों के प्रति समान सम्मान और आस्था की स्वतंत्रता, धर्मो में किसी प्रकार के भेदभाव का अभाव नहीं और धर्म और धर्मनिरपेक्षता को अलग–अलग मानना पर साथ ही अल्पसंख्यकों को किसी तरह का विशेष संरक्षण भी न देना ये एक तरह का बहुसंख्यकवाद का ही रूप है।

इस तरह से सुप्रीम कोर्ट के विभिन्न फैसलों को अगर हम देखें तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि फैसले आपस में परस्पर विरोधी हैं। कुछ फैसले बहुसंख्यकवाद को समर्थन देते हैं इस तरह अल्पसंख्यकों के अधिकारों को कुचलते हैं और कुछ फैसले अल्पसंख्यकों के अधिकारों को समर्थन देते हैं। जबकि **एस. आर. बोम्मई केस** में फैसला साफ–साफ कहता है कि धर्म निरपेक्षता भारतीय राजनीति की प्रमुख विशिष्टता है और धर्मनिरपेक्षता को सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और आदर के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया। इस केस ने धर्म और राज्य को भी अलग–अलग रखा। लेकिन बोम्मई फैसले के अभिप्रेत अन्य फैसलों में नज़र नहीं आये।

एन.सी.ई.आर.टी. पाठ्य पुस्तक केस, हिंदुत्ववादी फैसले, सरला मुदगल और जान वल्लमात्तोम केसों में सुप्रीम कोर्ट ने जो फैसले दिये वो धर्म निरपेक्षता के खिलाफ हैं। इस नज़रिये से देखा जाये तो सुप्रीम कोर्ट के फैसले बहुलतावाद, विविधता में एकता, और धर्म निरपेक्षता के पक्ष में कम बहुसंख्यकवाद के पक्ष में ज़्यादा नज़र आते हैं वो भी राष्ट्रीय एकीकरण और सामाजिक सुधारों के नाम पर। एक बात और याद रखने की है कि ये सारे फैसले भा.ज.पा. –राजग के राज के दौरान आये। ये फैसले पूरी तरह साबित करते हैं कि पिछले 6 सालों में सुप्रीम कोर्ट का किस हद तक सांप्रदायिकरण हो गया था। ये भारतीय लोकतंत्र के लिये एक गहरी चिंता का विषय है। यूपीए सरकार को इस बारे में सोचना चाहिये।

दि टेस्ट ऑफ इंडिया

योगेश भटनागर

मैं निज़ामुद्दीन स्टेशन पर बैठा गोवा एक्सप्रेस के प्लेटफार्म पर लगने का इंतज़ार कर रहा हूँ। साथ ही देख रहा हूँ प्लेटफार्म की दीवारों पर नये नारे पेंट करते हुए आर्टिस्टों को। 'स्टेशन को साफ़ रखें', 'स्टेशन साफ़ रखने में हमारी मदद करें', 'स्वच्छता ईश्वर का दूसरा रूप है', 'कचरा कचरादान में डालें', 'प्लेटफार्म पर खाने का सामान, मूंगफली के छिलके, चाय के खाली गिलास आदि न फेंकें'। सारे प्लेटफार्म की दीवारें कुछ इसी तरह के नारों या सूचनाओं या यूं कहूं हिदायतों से भर दी गईं थीं। पिछले हफ्ते ही रेलमंत्री रामविलास पासवान ने पार्लियामेंट में ऐलान किया था कि 'अब भारतीय रेलों में साफ–सफ़ाई का ध्यान रखा जाएगा, हर स्टेशन पर रेल सफाई कर्मचारी हर बोगी के टॉयलेट साफ करेंगे, फिनायल डालेंगे और हर बोगी में झाड़ू लगाएंगे। टॉयलेट धोने के लिए मशीनें खरीदी जाएंगी, सफाई कर्मचारियों को नयी झाड़ुएँ दी जाएंगी, नई वर्दी दी जाएगी और किसी भी रेलयात्री को अपनी बोगी में सफाई करवाने का अधिकार होगा। मैं यह ख़बर भी और ख़बरों की तरह एक मनगढ़ंत कहानी समझ कर भूल गया था, पर आज अचानक प्लेटफार्म की दीवारों को पुतते हुए देख मेरा माथा ठनका। क्या रेलमंत्री अपने इरादे के पक्के हैं ? क्या वाकए में हम अब साफ रेलों में सफर कर सकेंगे, मतलब टॉयलेट्स में पानी होगा, सीटें साबूत होंगी, वो बंद हो सकेंगे अंदर से, उनमें बल्ब हुआ करेंगे और हर स्टेशन पर रेल सफाई कर्मचारियों का हमला हुआ करेगा। हमें साफ–सुथरी और स्वच्छ गाड़ियों में सफ़र करने का मौका मिलेगा ? मुझे यह सब सवाल इसलिए बेचैन कर रहे थे क्योंकि मैं हर दूसरे महीने दिल्ली से मनमाड अपने परिवार से मिलने जाता हूँ। मैं गोवा एक्सप्रेस की पैंट्रीकार के मालिक से लेकर हर वेटर को नाम से जानता हूँ, सभी टिकट कलेक्टर मुझे पहचानते हैं और आलम यह है कि अगर मैं कभी अचानक घर जाने को तय कर लूं और रिजर्वेशन न करा पाऊं तो स्टेशन पर त्यागी जी या सिंह साहेब मिल जाते हैं और बिना कुछ दिए बर्थ दे देते हैं, साथ ही यह भी कहते हैं–''सर जी, हमारे होते हुए आप क्यों जनरल बोगी में जाएं। हमें भी गुरुजी की सेवा का पुण्य उठा लेने दीजिए।'' मैं पेशे से एक स्कूल टीचर हूँ। अपने परिवार और बच्चों को क्यों मनमाड में छोड़ कर आया हूं और दिल्ली में नौकरी कर रहा हूं, यह बताने की ज़रूरत नहीं समझता। अक्लमंद को इशारा ही काफी यानी बेरोज़गारी मुझे मुंबई नहीं दिल्ली ले आई और बाईचान्स एक फैसिलिटेटर की मदद से उन दिनों के आनगोइंग रेट पर दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में नौकरी खरीद ली। आजकल के रेट देने पड़ जाते तो मेरी तो नानी ही मर गयी होती। ख़ैर, बात यह नहीं है, अहम बात है मेरा हर दूसरे महीने घर जाना और वो भी गोवा एक्सप्रेस से।

मैं, जैसा कि मैंने बताया, प्लेटफार्म पर बैठा उसकी दीवारों को पुतते देख रहा था, तभी मुझे आवाज़ सुनाई दी–''सामान उठाइए''। पलट कर देखा, एक सफाई कर्मचारी हाथ में लम्बी झाड़ू लिए मेरे बैंच के पास अब तक के प्लेटफार्म पर का कूड़े के ढ़ेर का मेरे सामान से लगाकर खड़ा था। मैंने उठकर अपना सामान बैंच पर रख दिया। सफाई कर्मचारी कूड़े के ढेर को झाड़ू से धकेलता और आगे ले गया। थोड़ी ही देर में प्लेटफार्म पूरी तरह से साफ हो गया था। पलट कर देखा तो तीन सफाई कर्मचारी प्लेटफार्म को बकायदा धोते हुए आ रहे थे, उनसे काफी दूर एक कर्मचारी रबर का मोटा पाइप हाथ में लिए हर तरफ घुमा–घुमाकर पानी फेंक रहा था और थोड़ी–थोड़ी देर में आगे बढ़ रहा था। यह सब देख कर यकीन करने को दिल कर रहा था कि एक बार तो एक रेलमंत्री दुनिया की सबसे बड़ी, सबसे लम्बी और घनी रेल व्यवस्था को साफ रखने का वायदा निभा रहा है।

यह सोच ही रहा था कि देखा राहुल, रौनी, रमज़ान और राजेंद्र सिंह भागते–भागते प्लेटफार्म के अंदर आए। राहुल आगे था और बाकी तीनों उसके पीछे। इन चारों को मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ। मैं ही क्या, वो सब जो रेल से सफर करते हैं, इन्हें अच्छी तरह से जानते हैं। हो सकता है वो इनके नाम न जानते हों, पर इनको अच्छी तरह से जानते हैं। मैंने देखा राहुल सबको पढ़ा रहा था, वो नारे जो दीवारों पर पुते थे और दिखा रहा था –

प्लेटफार्म पर झाड़ू लगाते और प्लेटफार्म धोते चार रेल सफाई कर्मचारी। मुझे उनकी बातें सुनाई तो नहीं पड़ रही थीं, पर उनके चेहरों पर आते–जाते भावों को मैं ठीक से पढ़ पा रहा था। वो चारों परेशान और बेज़ार नज़र आ रहे थे। मैं उनकी बेज़ारी और परेशानी समझ गया था। कहना चाहता था दो–चार महीने की बात है, सब कुछ वैसा ही हो जाएगा, जैसा आज से पहले था। वो बच्चे थे। अपने मुल्क की खासियतों से नावाकिफ़ थे। जो देख रहे थे उसी पर यकीन कर रहे थे। अगर वक़्त होता तो मैं उन्हें बताता। पर गाड़ी प्लेटफार्म पर लग चुकी थी और मैं एस–2 में अपनी बर्थ नंबर नौ पर बैठ चुका था। हमेशा की तरह प्लेटफार्म की दूसरी तरफ़ श्रमजीवी एक्सप्रेस भी लग चुकी थी। गोवा एक्सप्रेस ने रेंगना शुरू कर दिया था। वो अभी तक प्लेटफार्म पर ही खड़े थे। मैं बेचैन था, क्या आज ये मंत्री की बात सच मानकर घर लौट जाएंगे ? क्या आज इनके घर में रोटी नहीं बनेगी। मां और बाप दोनों ही मिलकर पिटाई करेंगे ? मेरा मन कर रहा था भाग कर उतर कर जाऊं और उन्हें कहूं जो दिख रहा है उसका यकीन मत करो और घुस जाओ अपनी गाड़ी में। मैं चाहता था कि वो जो दिख रहा है उस पर यकीन न करें। जैसे–जैसे गाड़ी रफ़्तार पकड़ रही थी वैसे–वैसे मेरा दिल बैठ रहा था। तभी मैंने देखा चार बिन्दु ज़ोर से हरकत में आए और गाड़ी की तरफ़ तेज़ी से हिले। मेरी जान में जान आयी। आख़िर वो अपनी गाड़ी में घुस ही गए। सारे रास्ते मैं उन्हीं के बारे में सोचता रहा। जाने क्या हुआ होगा ? उन्होंने कुछ पैसे कमाए भी होंगे या नहीं ? उनकी दिहाड़ी कैसी रही होगी ? एक बात तो मैं जानता था कि टी.टी. उन्हें गाड़ी से नहीं उतारेगा। सभी उनको जानते थे। जाने वाली और आने वाली गाड़ियों के। आख़िर वो इस रूट पर पिछले 8 साल से चल रहे थे। पहली बार जब उनको देखा था तो वो 8–9 साल के थे। ''ऐसे भीख क्यों मांगते हो। अभी छोटे हो पढ़ते क्यों नहीं ?'' ''सर, हम भीख नहीं मांगते। अपने कपड़ों से बोगी साफ करते हैं और एवज में अपना मेहनताना मांगते हैं।'' राहुल ने कहा।

''वो मेहनताना जिसे हर देने वाला अपने आप तय करता है।'' रौनी ने कहा।

''कोई पैसे में देता है तो कोई बासी बची–खुची रोटी में।'' रमज़ान ने कहा।

''और कोई यह कहकर टाल देता है कि छुट्टा नहीं है या पड़ोसी की तरफ इशारा करते हुए कह देता है इन्होंने दे तो दिया।'' राजेन्द्र ने कहा।

''और ऐसा करने वाले हमारे मां–बाप हैं, इतने छोटे बच्चों से भीख मंगवाते हैं।'' राहुल ने कहा।

''अब आप ही बताइए, सर, पैसेंजरों के फेंके हुए कचरे को साफ करके उनसे अपना मेहनताना माँगना, क्या भीख माँगना है ?'' रौनी ने पूछा।

मेरे पास कोई जवाब नहीं था। सोच रहा था कि जिनको गाड़ी, प्लेटफार्म, टॉयलेट और वेटिंग रूम्स को साफ करने की पगार मिलती है वो तो अपना काम किए बिना ही पगार ले रहे हैं और जो काम करके कुछ मांग रहे हैं, उन्हें भीख कह रहे हैं। मुफ़्त की पगार या मेहनत की भीख ?!! इनको बाल मज़दूरों में भी नहीं रखा जा सकता क्योंकि ये किसी माचिस, बीड़ी या पटाखों की फैक्टरी में काम नहीं कर रहे थे। और ना ही किसी गैराज़, ढाबे और चाय की दुकान में। विकलांग, अंधे या गूंगे भी नहीं थे। मैं आज तक उनको जवाब नहीं दे पाया हूँ।

''सर, हम हर इतवार को शाम में 'सहज' में जाते हैं'', राहुल ने कहा।

''सहज नहीं जानते होंगे, सर।''

''नीलाक्षी मैडम हम सबको पढ़ाने आती हैं'', रौनी ने बताया।

''सहज मुफ़्त में हमारी झुग्गी–झोपड़ी में रह रहे बच्चों को पढ़ाने वाली एक संस्था हैं'' रमज़ान ने कहा।

''हम चारों अब तीसरी क्लास में हैं। अगले साल हम बोर्ड की परीक्षा देंगे सर'', राजेन्द्र ने बताया।

मैं जानता था कि दिल्ली में कई एन.जी.ओ. हैं जो झुग्गी–झोपड़ी में रह रहे बच्चों और औरतों को पढ़ाते थे, संगीत सिखाते थे और थियेटर भी। पर आज भी मैं यह तय नहीं कर पाया था कि इनके 'इसको' क्या नाम दूँ – 'भीख या फिर सेल्फ एम्पलायड'। वैसे दिल्ली पुलिस के मुताबिक ट्रैफिक सिग्नलों पर कुछ भी बेचने वाले और भीख मांगने वाले दोनों ही दिल्ली बेगर्स एक्ट के तहत सज़ा के लायक हैं। ये बात और है कि उन्हें इन सबको पकड़ कर रिमांड होम में रखने की जगह नहीं है। वैसे भी जिस कोठरी में दो क़ैदी रहने चाहिए उसमें आठ–आठ क़ैदी रहते हैं।

पुलिस, भिखारी और व्यापारी सभी अपनी–अपनी कमज़ोरियां और ताक़त जानते हैं। इसीलिए साल में दो बार 'भिखारी हटाओं' अभियान अख़बारों की सुर्खियों और टी.वी. इंटरव्यूज़ के माध्यमों से दस–पन्द्रह दिनों तक चलाया जाता है। सालाना रिपोर्ट का एक पन्ना भरने के लिए। कोटा पूरा करना है।

कहीं यही सब तो रामविलास पासवान का ये 'सफाई

अभियान' नहीं कर रहा ? मेरे मन में यह ख़्याल कौंधा पर उसे इसकी क्या ज़रूरत है ? बरसों से सफाई कर्मचारी बिना काम किए अपनी पगार उठा रहे हैं। आज ही क्यों इसको याद आई कि सफाई कर्मचारी बिना काम किए अपनी पगार उठा रहे हैं। आज ही क्यों इसको याद आई कि सफाई कर्मचारी अपना काम करें ? ख़ुद भी तो बरसों से गंदी, बदबूदार, मक्खियों, कीड़े–मकोड़ों, कॉकरोचों और मच्छरों से भरी गाड़ियों में सफर कर ही रहा था। आज अचानक पैसेंजर की सेहत और आराम की इतनी फ़िक्र क्यों ? हो सकता है आपके मन में मेरे इन सवालों के जवाब आए हों, पर मेरे मन में जवाबों के बजाए एक ही सवाल आ रहा हैः उन बच्चों की दिहाड़ी कैसी रही होगी ? मैं जानता था, इस सवाल के जवाब के लिए मुझे कम–से–कम दो महीने इंतज़ार करना पड़ेगा, क्योंकि मेरी वापसी हमेशा झेलम एक्सप्रेस से होती थी और रात नौ बजे वो चारों कहीं भोपाल पहुँच रहे हुआ करते थे। रात में वहीं प्लेटफार्म पर सोते थे और सुबह 8 बजे की गाड़ी पकड़ते थे जिससे नाश्ते, लंच, चाय निबटने के बाद देहली पहुँचें। वापसी में ऐसी गाड़ी से आने का मतलब था पैसों के साथ कुछ खाना। मतलब पैसों के साथ कुछ खाना भी। हफ्ते में तीन दिन मुफ़्त का खाना और पैसों की बचत। उन्होंने 'डबल मज़ा', 'हक से माँगों' वगैरह इस तरह के टी.वी. के कई विज्ञापनों को अपनी ज़िंदगी की असलियत से जोड़ लिया था, और जब भी वो कोई इस तरह के स्लोगनों का इस्तेमाल करते तो सब ख़ूब हंसा करते थे। एक बार तो मैं भी अपनी हंसी नहीं रोक पाया। उनकी रचनाशक्ति पर ताज्जुब भी हुआ।

''सर जानते हैं, यह रमज़ान ने कल एक मुसाफिर को क्या कह कर अपना मेहनताना मांगा ?''

''क्या ?''

''एक कप कॉफी मिलेगी ?''

हँसते–हँसते मेरा पेट दुःख गया। कौन कहता है स्लम में रहने वाले बच्चे रचनाकार नहीं हो सकते ? मौका मिलते ही साबित कर देते हैं।

इस बार मैं मनमाड चार महीने बाद जा रहा था। दीवाली पर। थोड़ी–थोड़ी ठंड शुरू हो गई थी। एक स्वेटर से काम चल जाता है। हमेशा की तरह बैग पैक करते वक्त से ही मैं उन चारों से मुलाकात का तसव्वुर करने लगा था। मैं जानता था उनकी मुलाकात का ख़्याल ऑटो में भी मेरे साथ रहेगा। आज सोच रहा था, पूछूंगा वो ट्रिप कैसा रहा ? उसके बाद इन चार महीनों में डबल मज़ा, 'हक से माँगों' और एक कप कॉफी मिलेगी', कैसा रहा ? कोई नया स्लोगन ?

मैं प्लेटफार्म पर आकर हमेशा वाले बैंच को ढूंढ़ने लगा। पर बैंच की जगह अब प्लास्टिक की लाल कुर्सियों ने ले ली थी। मतलब आराम का पूरा–पूरा ख़्याल कर रहा था मंत्री। एक तरह से ठीक है, बैंच पर तो कभी–कभी कोई सिरफिरा अकेला ही कब्जा कर लेता है सोने या बीमारी के बहाने या फिर यह कह कर खाली नहीं है, पानी पीने गए हैं। मैंने देखा कि दीवार से सटी चार–चार कुर्सियों की एक कतार लगी हुई है। बैंच तो बीच में हुआ करता था। उसके अपने फायदे थे। बैंच पर बैठकर सारा नज़ारा अच्छे से देखा जा सकता था। ज़रा–सा सिर घुमाया तो दीवारों पर लिखा पढ़ा जा सकता था। 'मे आई हैल्प यू' में कौन खड़ा क्या पूछ रहा है देखा–सुना जा सकता था। 'मे आई हैल्प यू' के अंदर बैठा पुलिस वाला पूछने वाले को डांटता ज़्यादा था या फिर अक्सर होता ही नहीं था। बैंच पर बैठ कर क्या नहीं देख सकता थाः ज़्यादा बोझ उठाए कुली, ऊंघते हुए पैसेंजर, चादर बिछाए खाना खाते हुए परिवार, प्लेटफार्म के किनारे बैठे खैनी बनाते हुए ज़वान और बूढ़े, तरह–तरह की हाथ–गाड़ियों को ठेलते हुए ख़ामोश वैन्डर और भी बहुत कुछ देख सकते थे आप। इस कुर्सी पर बैठ कर दीवारों पर लिखा पढ़ सकते थे और यही नहीं, दूसरे नज़ारे भी देख सकते थे। कुर्सी आपका एरिया ऑफ ओपरेशन लिमिट कर देती है। कुर्सी में बैठने से पहले मैंने उन जानी–पहचानी दीवारों पर एक नज़र डाली। सभी कुछ वैसा ही और वही लिखा हुआ था। प्लेटफार्म पहले के बजाए साफ भी नज़र आया। प्लेटफार्म पर 'यूज़ मी', 'मेरा इस्तेमाल करें' लिखे कचरादान भी दिखे। लगता था, रेल की पटरियां अभी–अभी धोयी गई थीं। एक किनारे प्लेटफार्म और टॉयलेट धोने की मशीनें बड़ी शान से खड़ी थीं। मैं सकते में आ गया। कहीं वो चारों ?!! मैं सोच ही रहा था कि हमेशा की तरह वों चारों ठीक अपने पुराने वक्त पर प्लेटफार्म पर आए। मैं उन्हें बुलाने के लिए खड़ा ही हुआ था कि राहुल ने मुझे देख लिया। चारों मेरे पास भागे–भागे आए।

''सर, इस बार तो आपने चार महीने कर दिए'', राहुल ने कहा।

''सब ठीक तो है सर ?'' रमज़ान ने पूछा।

''पिछली तारीख़ पर हमने आपकी बहुत राह देखी सर'', रौनी ने कहा।

''कितना कुछ बताना है सर आपको'', राजेन्द्र ने कहा।

''हां, बताओ कैसा चल रहा है 'डबल मज़ा', 'हक से माँगों' और एक कप कॉफी मिलेगी।

''यह मंत्री तो हमको भूखा–नंगा कर देगा सर'', राहुल ने कहा।

''तेरी जात का है न'', राजेन्द्र ने कहा।

''जात को छोड़ो। असली बात है, मंत्री बन जाने के बाद हर कोई अपनी जात भूल जाता है और साथ–साथ जात से जुड़ा काम भी। मंत्री होने के बाद उसकी जात मिनिस्टर हो गई है'' रौनी ने कहा।

''इसीलिए तो मेरा परदादा नसीर खान बन गया। तंग आ गया था जात से जुड़ा काम करके और ऊपर वालों की गालियां खा खाकर।'' रमज़ान ने कहा।

''हमारे परदादाओं ने भी तो इसीलिए अलग–अलग नाम ले लिए थे, पर गरीबी तो जात नहीं देखती, भूख नाम नहीं पूछती'' रौनी और राजेन्द्र ने कहा ''पर नौकरी जात पूछती है'', राहुल ने कहा।

सबकी समझ ने मुझे चौंका दिया। यह न तो टी.वी. देखते हैं, न अख़बार पढ़ते हैं, न कोई इन्हें इस तरह का साहित्य पढ़ाता है, फिर यह सब कैसे ?

''ज़िंदगी के तजुर्बों से बड़ा कोई टीचर नहीं होता'', गोर्की का कहीं लिखा याद आ गया।

मैं बेचैन था, उनकी चार महीने की जिंदगी के तजुरबों को सुनने के लिए।

''क्या हुआ उस दिन के बाद ?'' मैंने पूछा।

तभी प्लेटफार्म पर पब्लिक एड्रस सिस्टम पर सुनाई पड़ा – ''निज़ामुद्दीन से आगरा–ग्वालियर, भोपाल, मनमाड होती हुई मड़गाव जाने वाली गोवा एक्सप्रेस अपने निर्धारित समय से चालीस मिनट की देरी से जाएगी। यात्रियों की असुविधा के लिए खेद है।'' इसके फ़ौरन बाद सुनाई पड़ा–''मुम्बई से फ़िरोज़पुर वाया भोपाल, आगरा–मथुरा के रास्ते आने वाली गाड़ी अपने निर्धारित समय से दो घंटे की देरी से चल रही है। इसके आने के संकेत मिलते ही आपको सूचना दे दी जाएगी। इस देरी के लिए हमें खेद है।''

''सर, आपकी ट्रेन तो चालीस मिनट लेट है, मतलब डेढ़ घंटा'', राहुल ने कहा।

''हां, चलो कैंटीन में कुछ खा लेते हैं। अगर गाड़ी वक़्त पर चलती तो मैं गाड़ी में खा लेता।''

मैंने देखा चारों सकुचा रहे हैं। आज तक इतने सालों में कभी इनको खाने के लिए कहा ही नहीं ज़रूरत ही नहीं पड़ी। मेरे बहुत कहने पर चारों साथ खाना खाने के लिए तैयार हो गए। कैंटीन में घुसते ही पांच थालियों का आर्डर दिया और किनारे की मेज़ पर जा बैठे। तभी पब्लिक एड्रेस सिस्टम पर सुनाई पड़ा– ''यह स्टेशन आपका अपना है, इसे स्वच्छ रखने में हमारी सहायता करें।''

''क्यों रौनी कैसा चल रहा है रेलवे का सफाई अभियान ?''

''सर, क्या बताएं ? सारा रोज़गार चौपट होता दिख रहा है'', रौनी ने कहा।

''पिछले चार महीनों से सफाई कर्मचारी कुछ ज़्यादा ही मुस्तैद हो गए है'', राजेन्द्र ने कहा।

''हर स्टेशन पर टॉयलेट धोने वाली मशीनें बोगी के बाहर खड़ी होती है'', रमज़ान ने कहा।

''और हाथ में झाड़ू लिए सफाई कर्मचारियों की पूरी फौज। सब पुरानी जान–पहचान दोस्ती भूल गए हैं। हर बार कहते हैंः ''हमारी रोटी–रोज़ी पर लात मत मारो इस तरह।'' पर एक ही जवाबः ''ऊपर से आर्डर है। हमें तो यह करना ही है'', राहुल ने बताया।

''सर, पहले हमें एक बोगी 70–75 रुपए, खाना, अख़बारों और मैगजीनों की रद्दी देती थी और अब सिर्फ रद्दी ही रह गई है'' रमज़ान ने बताया।

''टीटी भी देखकर मुस्कराता है'', राजेन्द्र ने कहा।

''कहता है अब तो तुम लोग बोझ ज़्यादा हो गए हो। हर स्टेशन पर उतार देता है। मोबाइल चैकिंग का पता लगते ही टॉयलेट में बंद कर देता है'', रौनी ने कहा।

''और वापसी में'' मैंने पूछा।

''कोई फ़र्क नहीं है'', राहुल ने कहा।

'फिर कैसे करते हो ? कहीं चोरी–चकारी, जेबकतरी तो नहीं करने लगे ? पूछना चाहता था, पर ख़ामोश रहा।

इतने में ही श्रमजीवी के जाने का ऐलान हो गया। चारों जल्दी–जल्दी, उठे, अपने हाथों से ही मुंह साफ किया और यह कहकर अगली बार मिलेंगे तो सब बताएंगे सर, अभी हमारी ट्रेन जा रही है। मैंने भी कहा, ''ठीक है।''

मैं उन्हें भाग कर थ्री–टायर स्लीपरों में चढ़ता देखता रहा। वो चारों अंदर कहीं गुम हो गए और धीरे–धीरे पिछले गार्ड की हरी झंडी भी आंखों से ओझल हो गई। 'मशीनें, फौज, रद्दी, मुस्कुराहट और बोझ' यही शब्द देर तक मेरे कान में गूंजते रहे। और फिर एक ख्यालः कैसे गुज़ारा होता होगा ? मुझे तो यह भी पता नहीं था कि इनके परिवार में कौन–कौन हैं ? इनके परिवार में ये बड़े हैं या सबसे छोटे ? कुछ भी तो नहीं जानता था। जानने का कभी ख्याल ही नहीं आया। मेरी ट्रेन जाने का भी ऐलान हो गया था, मैं अपने स्लीपर में घुसा और अपनी बर्थ पर जा बैठा। खिड़की

से बाहर झांकने लगा, तभी लगा कि वो चारों मेरी ही गाड़ी में घुस रहे हैं। एक वहम या अपेक्षा ?! नहीं पता ?!

अगली बार जब मैं नये साल पर घर गया तो उनसे मुलाकात नहीं हुई। हालांकि मैं काफी पहले पहुंच गया था और ट्रेन इस बार भी लेट थी। दो घंटे के इंतजार के बाद भी वो कहीं नज़र नहीं आए। सोचा कोई और काम ढूंढ़ लिया होगा या फिर आज वापस आने का दिन होगा। कहीं उन्हें रेलवे पुलिस ने पकड़ कर रिमांड होम में तो नहीं डाल दिया ?!–ये डरावना ख्याल जाने क्यों मेरे दिमाग में कौंध गया। ऐसा क्यों होता है कि जिनसे हम जुड़े होते हैं उनके बारे में तरह–तरह के बेबुनियाद डर और थर्रा देने वाले ख्याल ही क्यों आते हैं। खासकर जब आप उनका इंतजार कर रहे हों या वो अपने अपेक्षित समय पर न आ पाए तो!!! मुझे एहसास हो गया था कि मैं इन चारों से कहीं तो एक धरातल पर जुड़ गया हूं। और यह भी एहसास हो गया था कि जुड़ने के लिए कोई रिश्ता होना ज़रूरी नहीं होता। उनको देखने, उनसे बात करने और उनकी सुनने की बेचैनी इसका ही सबूत थे। रास्ते भर सोचता रहा कि अब तो मुलाकात गर्मियों की छुट्टियों में यानी पांच महीने बाद ही होगी, इतना लम्बा अंतराल! क्या वो भी मुझे मिस कर रहे होंगे ? अपने इस सवाल पर खुद ही हंस पड़ा। समझते क्या हो अपने आपको ? वैसे सच कहूं तो मैं उनसे मिलकर रेलमंत्री के 'सफाई अभियान' का हश्र जानना चाहता था, जिस पर करोड़ों रुपए दीवारें पोतने, मशीनें और झाड़ुएँ खरीदने पर खर्च हो गए थे। मेरा तजुरबा कहता था कि हर अभियान की तरह यह अभियान भी जल्दी ही दम तोड़ देगा। मशीनें खराब हो जाएंगीं, झाड़ुएँ टूट जाएंगी, नयी नहीं खरीदी जाएंगी, कर्मचारी पहले की तरह नहीं खड़े रहा करेंगे, टी.टी उनको बोझ भी नहीं मानेगा। हर अभियान की तरह यह अभियान भी भ्रष्टाचार का स्त्रोत बन जाएगाः झूठे बिल, पेमेंट में कमीशन, टेंडर की ब्लैक और ऊपर तक हिस्सा, आखिर हम अपने समाज के मनोविज्ञान के खिलाफ कैसे जा सकते हैं ?

मई की गर्मी, लू चल रही थी, पंखा भी गर्म हवा फेंक रहा था और मैं अपनी कुर्सी पर बैठा खचाखच भरे प्लेटफार्म पर उन चारों को ढूंढ़ रहा था। एन्ट्री गेट पर टकटकी लगाए बैठा था। मुसाफिरों की रेल–पेल, कुलियों का चिल्लाना, बच्चों का रोना, छोटी–छोटी बच्चियों का बैग अपने हाथ में लिए टेढ़े होकर चलना, एक माँ का रुककर, चिल्लाकर, अपने बँटी को बुलाना और एक बच्चे को अकेले खड़े रोते देखना। इन सबके बीच मेरी आंखें उन्हें ही ढूंढ़ रही थीं। मेरी ट्रेन के जाने में अभी चालीस मिनट थे। श्रमजीवी अभी लगी नहीं थी। तभी अचानक देखा कि वो चारों मेरी तरफ ही भागे आ रहे थे। वो साफ कपड़ें पहने थे, चारों के हाथों में एक लम्बा जूट का थैला था और सेहत भी कुछ ठीक हो गई थी।

''सर, कैसे हैं आप ? आठ महीने हो गए आपके दर्शन किए ?'' सबने ज़ोर से कहा। मैं सिर्फ मुस्कुराया। मुझे लगा उनके पास बहुत कुछ था मुझे बताने को।

''कैसा चल रहा है सफाई अभियान ?! मैंने पूछा।

''सर, 'सफाई अभियान' का पूरी तरह सफाया हो गया'', राहुल ने कहा।

''यह तो सिर्फ अब प्लेटफार्मों, बोगियों की दीवारों और टॉयलेटों में ही रह गया है'', रमज़ान ने कहा।

''सर, शुरु–शुरु के चार–पांच महीने तो भुखमरी में कटे। इतनी साफ हो गई थी ट्रेनें कि हमें कुछ भी नहीं मिलता था। प्लास्टिक की बोतलें, चाय, कॉफी के साबुत गिलास और रद्दी तक भी नहीं'', रौनी ने बताया।

''बहुत बुरा हाल था सर। हर प्लेटफार्म पर टॉयलेट धुलता और फिनायल डाली जाती, झाड़ू भी मारी जाती। नीली वर्दी वाले सब बोगियों में मक्खियों की तरह घुस जाते और उतनी ही तेज़ी से अपना काम करके भन–भन करते बाहर चले जाते'', राजेन्द्र ने कहा।

''पर तुम तो सभी काफी महफूज़ लग रहे हो। सेहत भी ठीक हो गई है और फटे कपड़े की जगह हाथ में थैला है। आख़िर यह सब क्या है ?'' मैंने पूछा।

''सर, किस्मत के खेल भी निराले होते हैं। मैं एक दिन सुबह ए.सी. थ्री टायर के टॉयलेट के पास बैठा ऊंघ रहा था, तभी एक औरत अपने छोटे बच्चे को बाथरूम कराकर टॉयलेट से बाहर आई। मुझे उठाया और कहा–''बच्चे ने टॉयलेट की सीट पर टट्टी कर दी है, ज़रा पानी से बहा दे। और कहते–कहते वो हाथ मे दो का सिक्का थमा गई बस सर, यही वो सुनहरा मोड़ था। खुशहाली आ गई। अगले ट्रिप से एक छोटी झाड़ू, प्लास्टिक की एक खाली बोतल, पेपर सोप के पैकेट और प्लास्टिक का एक मग और ये नया थैला रखना शुरू कर दिया।'' राहुल ने बताया।

''सर, अब हमारी तरक्की हो गई है। हम अब बड़े लोगों, मिनिस्टरों और अफसरों के टॉयलेट साफ करते हैं। मग देते हैं, सोप देते हैं और अगले मुसाफिर के आने तक टॉयलेट साफ करने का इंतज़ार करते हैं'' रमज़ान ने कहा।

''दो बार साफ करते हैं, सर, जाने से पहले और निपटने के बाद'', रौनी ने कहा।

''कुछ औरतें तो ज़रा ज़्यादा ही मीनमेख निकालती हैं। उनके लिए हम पेपर सोप की जगह 'लाइफबॉय' का छोटा टुकड़ा भी दे देते हैं। पर बताकर कि इसके दो रुपए होंगे'', राजेन्द्र ने कहा।

''शुरू में तो हम कुछ भी नहीं मांगते थे, जो जिसके मन में आता दे जाता, पर कोई भी दो रुपए से कम न देता। अगर पांच का नोट देता तो छुट्टा वापिस मांग लेता'', रमज़ान ने कहा।

''मतलब तुम अब टिप पर रहने लगे हो'' मैंने कहा।

''सर, मार्च में मैट्रिक की परीक्षा दी है'' राहुल ने कहा। यह बताते हुए उसे बहुत गर्व हो रहा था, यह साफ–साफ देख सकता था।

''यह तो बड़ी खुशी की बात है।'' फिर मैंने मज़ाक करते हुए कहा– ''तुम शायद सब मुसाफिरों को बता देते होंगे कि 'साहब आपकी सर्विस में एक मैट्रिक है?''

''नहीं सर, एक बार बता दिया था तो बड़ा लेक्चर सुनने को मिला था, 'नौकरी क्यों नहीं करता कोई', वगैरह–वगैरह।'' जी में तो आया कह दूं कि नौकरी हम जैसों को नहीं तुम जैसों को मिलती है जिनका कोई गॉडफादर होता है। पर सर, नहीं कह पाया। डर था कहीं वो बिना कुछ दिए न चला जाए, राहुल बता रहा था।

''पर तुम तो चार हो और ए.सी. बोगी तो सिर्फ तीन ही होती हैं। फिर कैसे। और फिर सारा काम दो घंटे में ही हो जाता होगा ?''

''सर, टर्न–बाई–टर्न एक बार चार टॉयलेट और एक बार दो टॉयलेट संभालते हैं'', रौनी ने बताया। रही काम की बात, तो शुरू–शुरू में तो काम बहुत जल्दी खत्म हो जाता था, पर जैसे ए.सी. थ्री टायर में एक बच्चे वाली औरत की ज़रूरत ने हमें सुनहरा मोड़ दिया, उसी तरह एक सुबह थ्री टायर स्लीपर की बोगी में, जो ए.सी. थ्री टायर से जुड़ी थी, एक औरत ने मुझे टॉयलेट साफ करके पैसेंजर को पेपर सोप देते देख लिया और तभी उसने मुझे पुकारा और इस तरह 'डबल मज़ा' शुरू हो गया'', राजेन्द्र ने बताया।

रौनी सिर्फ हंसता रहा। मैंने पूछा–''क्यों हंस रहे हो, रौनी ?''

''सर, अब हम 'डबल मज़ा' बारी–बारी से शेअर करते हैं। एक बार ए.सी. में और एक बार स्लीपर में'', रौनी ने कहा। मैं भी यह सुनकर हंस पड़ा। 'डबल मज़ा' का मतलब भी डबल हो गया था। इसी बीच रमज़ान ने गाइड को गाना 'तेरे मेरे सपने अब एक रंग हैं...शुरु कर दिया।

''पर नीली मक्खियां, मशीनें, झाड़ू, टी.टी. का बोझ... उन सबका क्या हुआ ?'' मैंने पूछा।

''सर, यह दिल माँगे मोर'' रमज़ान ने ठहाका मारते हुए कहा।

''यही तो है सर, 'दि टेस्ट ऑफ इंडिया'' राजेन्द्र ने कहा।

इतना कह वो चारों अपनी गाड़ी की तरफ भाग गए। मैं उन्हें देखता रह गया। मेरे मन में आया कि उन्हें बताऊं कि 'मेरा भारत महान' पर वो तो पहले ही से जान गए थे। कितनी जल्दी यह जेनरेशन सब समझ जाती है...।

''गोवा एक्सप्रेस प्लेटफार्म नंबर तीन से अपने निर्धारित समय 15 बजे के बजाए 15 बजकर चालीस मिनट पर जाएगी। असुविधा के लिए खेद है'', पब्लिक एड्रेस सिस्टम पर सुनाई पड़ा। मैंने देखा कि वो चारों बिन्दु में तब्दील हो गए थे और एक ही पल में नज़रों से ओझल हो गए। अचानक मुझे दिल्ली के महात्मा गाँधी रोड ट्रैफिक सिग्नलों पर अख़बार, मैगज़ीन और चौराहों पर सुबह फूलों के हार बेचते हुए बच्चे याद आए। साथ ही याद आए कचरा बीनने, उसे अलग करने और उसके पैकेट बनाने वाले बच्चे। पर तभी एक तर्कसंगत निश्चितता मेरे अंदर पसर गई।

'कथादेश' अगस्त, 2004 से साभार

पृष्ठ 24 का शेष.....

आरोपों से बरी न होने के बावजूद भी जॉर्ज को दोबारा मंत्री क्यों बना दिया गया ? वाजपेयी ने कहा 'इस पर मुझे कुछ नहीं कहना है।'

गुजरात, मोदी

मार्च 2002, गुजरात में सांप्रदायिक दंगों की जगहों का दौरा करते हुए वाजपेयी ने कहा कि वो गुजरात के दंगों पर शर्मिन्दा हैं। मोदी को राजधर्म निभाना चाहिये और कानून को सबसे ऊपर रखना चाहिये।

अप्रैल 2002 में दूसरे दौरे के दौरान कहा 'अगर गोधरा में बेकसूर लोगों को ज़िन्दा न जलाया जाता तो ये ट्रेजेडी बचाई जा सकती थी।'

मुस्लिम

मई 7, 1995 में 'आर्गनाइज़र' में संघ मेरी आत्मा है' नामक लेख में उन्होंने मुसलमानों के खिलाफ ज़हर उगला था।

जनवरी 2001 कुमारकम में कहा 'अल्पसंख्यक भाइयों के बीच मेरे बारे में दुष्प्रचार किया गया।'

2002 में यूपी में चुनाव प्रचार के दौरान कहा 'सरकार बनाने के लिये हमें मुसलमानों के समर्थन की ज़रूरत नहीं है।'

भाजपा और सांप्रदायिकता

डा. योगेश भटनागर

राजनीतिक क्षेत्र में कैमरे ने किसी पार्टी का इतिहास सबसे ज़्यादा अगर कैद किया है तो वो भाजपा है। कुछ दृश्यों का अगर एक कोलॉज बनाया जाए तो भाजपा कुछ ऐसी दिखेगीः पेंटिंग और दूसरी कलाकृतियों को नष्ट करने वाली, सांस्कृतिक साझी विरासत की धरोहरों पर हमला बोलने वाली, इतिहास का पुर्नलेखन कराने वाली, उदार और लोकतांत्रिक दिखने की कोशिश करने वाली, अपने को लौह पुरुष कहने वाले आडवाणी को, अपने को साध्वी कहने वाली उमा भारती सबके बीच कैमरे के सामने ललकारती हुई, फिर उनका पार्टी से निलंबन, उनके पत्रों का सीधा प्रदर्शन वगैरह–वगैरह, दागी संत शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती को जेल में माथा टेकने के लिए अपने असली और मुखौटे चढ़े नुमाइन्दे भेजने वाली और साथ ही दाग़ी मंत्रियों के मुद्दे उठाने वाली, तिरंगा यात्रा के नाम पर सांप्रदायिक उन्माद फैलाने वाली, सावरकर के नाम पर प्रदर्शन करने वाली और हिंदूत्ववाद की प्रचार करने वाली पार्टी, भ्रष्टाचार का विरोध करने वाली साथ ही जूदेव और बंगारू लक्ष्मण जैसे नेताओं वाली पार्टी जो पैसे लेते हुए कैमरे में बंद है। भाजपा एक ऐसी पार्टी है जो सरकार चलाते पकड़ी जाती है और पार्टी चलाते हुए भी पकड़ी जाती है। बेरोज़गार और भोलेभाले नौजवानों को त्रिशूल बांटती है, उसके मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी मुल्ला, मियां, सिखों और चर्चों को कोसते नजर आते हैं, पार्टी के वरिष्ठ नेता बाबरी मस्जिद को ढहाते देखते और उकसाते नजर आते हैं। भाजपा और संघ परिवार में अटूट रिश्ता है। आज भी भा.ज.पा. शासित राज्यों के मुख्यमंत्री प्रशासन के लिये नागपुर सलाह लेने जाते हैं। मतलब साफ है भाजपा लोकतांत्रिक पार्टी है ही नहीं बल्कि स्वभाव से तानाशाही है, अलगाववाद और नस्लवाद में यकीन करती है। वर्णवादी है इसीलिये वो दलित, अल्पसंख्यक और महिला विरोधी है और इसीलिये साम्राज्यवाद इसे भाता है। नीचे लिखी मिसालें इसका सबूत हैः

भाजपा शासित राज्य राजस्थान के दलित वकीलों ने हाल ही में राज्य स्तर की एक कन्वेनशन में कहा कि राजस्थान की न्यायपालिका में दलित वकीलों के साथ भेदभावपूर्ण और पूर्वाग्रह प्रेरित व्यवहार किया जाता है। कन्वेनशन में प्रस्ताव पारित कर कहा गया कि न्यायाधीशों और न्यायपालिका के अन्य अफसरों को दलित और आरक्षित समाज से आये वकीलों के प्रति संवेदनशील बनाना चाहिए। कन्वेनशन का आयोजन नेशनल कैम्पेन फॉर दलित ह्यूमन राइट्स (एन.सी.डी.एच.आर.) और ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क ने किया। एन.सी.डी.एच.आर. के राष्ट्रीय कन्वीनर ने कहा कि राजस्थान में शेड्यूल्ड कास्ट्स एंड ट्राईब्स एक्ट (प्रिवेन्शन ऑफ एटरोसीटीज़) के तहत बहुत ही कम सजाएं हुई हैं और उसकी वजह है दलितों के प्रति पूर्वाग्रह, जो केस को कमज़ोर बना देते हैं। इस कन्वेनशन में कई दलित वकीलों ने बहुत सी ऐसी मिसालें दीं जब उनके वकील साथियों और जजों ने उनके दलित होने का मज़ाक उड़ाया। राजस्थान के मानवाधिकार आयोग ने कहा है कि राज्य में दलितों और अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों का हनन हो रहा है।

राजस्थान में ही संघ परिवार के कार्यकर्ताओं ने उदयपुर से बस में आ रहे 22 लोगों के एक ग्रुप को, जिसमें एक गर्भवती महिला भी थी, बूंदी जिले में रोक दिया। संघ परिवार का ऐसा मानना है कि उन्हें धर्मान्तरण के लिए बुलाया जा रहा था जबकि वे सब 23–27 फरवरी के बीच हो रहे बाइबल के एक कोर्स में भाग लेने जा रहे थे। प्रशासन ने उनको और उनके प्रतिनिधियों को किसी भी तरह की सुरक्षा दे पाने में असमर्थता ज़ाहिर की। आरएसएस और बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने इमानुवेल मिशन द्वारा बाइबल का कोर्स करने आंध्र प्रदेश से आये 275 लोगों को कोटा रेलवे स्टेशन से ही वापिस भेज दिया। उन्हें मिशन तक यह कहकर नहीं आने दिया गया कि वो धर्मान्तरण के लिये लाये गये हैं। सरकारी रेलवे पुलिस ने भी संघ परिवार के कार्यकर्ताओं का साथ दिया। इमानुवेल मिनिस्टरीज़ इंटरनेशनल के प्रमुख बिशप थामस ने इस बात से इन्कार किया कि इन लोगों को धर्मान्तरण करने के लिये लाया गया था। उन्होंने बताया कि संघ परिवार के कार्यकर्ताओं ने इन लोगों की पिटाई की। पुलिस ने मिशन की इस मामले में शिकायत दर्ज़ करने से इंकार कर दिया जबकि उसी पुलिस ने मिशन के खिलाफ शिकायतें दर्ज़ की। सरकार भी मिशन को कई तरह से परेशान कर रही है। साथ ही संघ परिवार के कार्यकर्ताओं ने शहर में घूम–घूम कर मिशन के लोगों को डराया। सरकार और पुलिस उन्हें समर्थन दे रही है। इसी बीच

सरकार ने धर्मान्तरण विरोधी कानून बनाने की घोषणा कर दी जो संघ का एजेंडा है।

राजस्थान प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रवक्ता रियाजुद्दीन शेख का कहना है कि विहिप और बजरंग दल सरीखे संगठन राज्य के आदिवासी–बहुल इलाकों में घर वापसी के नाम पर ज़बर्दस्ती धर्मान्तरण करवा रहे हैं। जयपुर के पास जामडोली गांव में केशव विद्यापीठ के नाम से एक हाई स्कूल चलाया जा रहा है यहीं पर आर.एस.एस. केशव विद्यापीठ विश्वविद्यालय बनने जा रहा है।

8 अप्रैल को होली के बाद निकाले गये एक जुलूस ने एक मस्जिद पर भगवा झंडा फहरा दिया जिसकी वजह से सांप्रदायिक दंगे शुरू हो गये। भीलवाड़ा ज़िले के मंडल शहर में अप्रैल में हुए सांप्रदायिक दंगों के शिकार मुसलमान परिवारों के आज तक कोई न्याय नहीं मिला है। मंडल में विहिप, बजरंग दल और संघ परिवार ने पुलिस के साथ मिलकर मुसलमानों के घर लूटे, उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचायी और उनके धर्म को बेइज्जत किया। पुलिस ने मुसलमानों को ही गिरफ्तार किया, थाने में उनकी पिटाई की और उनके घरों की तलाशी ली। 27 मुसलमानों के खिलाफ कत्ल करने और सांप्रदायिकता फैलाने की कोशिशों के जुर्म में पुलिस द्वारा मामले दर्ज किये। इस दंगे में कुल सात हिंदू गिरफ्तार किये गये।

एक शिक्षक अब्दुल हमीद अन्सारी, जिनकी पुलिस की पिटाई की वजह से हड्डियाँ टूट गयी हैं, ने बताया ''मुसलमानों की दुकानें लूटी गयीं और जलायी गयीं। भीड़ ने मस्जिदों और मज़ारों तक को नहीं छोड़ा, उन्हें भ्रष्ट किया। पुलिस ने भी दंगाइयों का इसमें पूरा साथ दिया। सरकार ने तीन मुस्लिम अफसरों को सस्पेंड कर दिया है और तीन छात्रों को पूछताछ के बहाने अजमेर ले जाकर सालाना इम्तिहान में नहीं बैठने दिया। पुलिस कर्मियों ने अन्सारी मुहल्ले में आकर मुसलमानों के घर लूटे, औरतों और बूढ़ों को बेइज्ज़त किया, वो नगदी और जेवर उठा कर ले गये।'' सत्तर साल के बूढ़े नज़ीर मोहम्मद ने अपना घायल चेहरा दिखाते हुए कहा '' एक पुलिस अफसर ने मुझे गालियां दीं, मेरी दाढ़ी नोची और मुझे मेरे घर से बाहर घसीटा।'' मुसलमानों ने आधा दर्जन पुलिस कर्मी और एक बड़े अफसर की पहचान की है जिन्होंने आठ अप्रैल को उनके साथ जुल्म किये। उनके नाम भी सरकार को भेज दिये है। चांद मोहम्मद, एक स्थानीय निवासी के मुताबिक मुसलमानों को अब यहां न्याय मिलने की कोई उम्मीद नहीं है। साफ ज़ाहिर है कि राजस्थान में गुजरात की तर्ज़ पर पुलिस और प्रशासन का पूरी तरह सांप्रदायिकरण हो चुका है और प्रशासन बेगुनाह मुसलमानों के खिलाफ मामले दर्ज कर रहा है।

राजस्थान के ही भीलवाड़ा के करजलिया गाँव में एक मार्च को आर.एस.एस. की शाखा के एक प्रचारक के कत्ल के बाद आर. एस.एस. के कार्यकर्ताओं ने मुसलमानों को डराना धमकाना शुरू कर दिया है। डर के मारे 18 मुस्लिम परिवार गाँव छोड़ कर चले गये हैं। जो वापस आये हैं वो डर में जी रहे हैं और गाँव वालों ने उनका बहिष्कार कर रखा है। एक मार्च को आर. एस.एस. की शाखा के शिक्षक का कत्ल होने के बाद भीलवाड़ा ज़िले में सांप्रदायिक दंगे बढ़ गये हैं। गैरतार्किक आधार पर दो जवान लड़कों को गिरफ्तार किया गया है जिसकी वजह से गाँव में रोष है। 6 मार्च की शोक सभा में मुसलमानों को मार डालने और उनके घर जला देने की धमकी दी गयी। 16 मार्च को आर.एस.एस. और बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने भीलवाड़ा–ब्यावर मार्ग को बंद कर दिया और यातायात को ठप्प कर दिया। उसी दिन राज्य के गृहमंत्री गुलाब चंद कटारिया के विज़िट के बाद सांप्रदायिक उन्माद और भी बढ़ गया।

ऊपर लिखा साबित करता है कि राजस्थान में भाजपा की सरकार आने के बाद प्रशासन और पुलिस का सांप्रदायिकरण शुरू हो गया है। राजस्थान गुजरात बनने की दिशा में जा रहा है।

झारखंड में भाजपा सरकार द्वारा शिक्षा का सांप्रदायिकरण पूरे जोर–शोर से चल रहा है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक टीम ने अपनी जाँच के दौरान पाया कि विहिप द्वारा चलाये जा रहे एकल विद्यालयों ने गाँव के बच्चों में नान फॉर्मल शिक्षा के प्रसार के नाम पर सांप्रदायिक शिक्षा का प्रसार करने के साथ –साथ बड़े पैमाने पर मंत्रालय द्वारा दिये गये अनुदान में घोटाला किया। मतलब सांप्रदायिकरण और भ्रष्टाचार दोनों ही पाये गये।

टीम ने पाया कि झारखंड में चलाये जा रहे एकल विद्यालयों में छात्रों के उपस्थिति रजिस्टर और सरकारी स्कूलों दोनों के उपस्थिति रजिस्टरों में एक ही नाम दर्ज थे। यह किसी भी तरह मुमकिन नहीं है कि एक ही छात्र दो स्कूलों में उपस्थित रहे और पढ़े। साफ ज़ाहिर है एकल विद्यालयों के रजिस्टर सिर्फ अनुदान लेने के इरादों से बनाये गये थे। इसके अलावा एकल विद्यालय के शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिये बनायी गयी पाठ्य पुस्तक 'खेलें, कूदें, नाचें, गायें' के लेखक राकेश पोपली खुद मंत्रालय की अनुदान समिति के सदस्य थे जो तय करती थी किस गैर सरकारी संगठन को अनुदान दिया जाये।

पाठ्य पुस्तकें किस हद तक सांप्रदायिक है इसका एक उदाहरण हैः बिरसा मुंडा की जीवनी। राकेश पोपली लिखते हैः बिरसा ने एक मिशनरी स्कूल में शिक्षा पायी, ईसाई धर्म में धर्मान्तरण किया, उन्हें गाय का माँस खाने के लिये मजबूर किया गया, होस्टल में उनकी चोटी काट दी गयी जिसके बाद

वो दुखी होकर घर वापस आ गये। घर आने के बाद उन्होंने तुलसी की पूजा करनी शुरू कर दी, जनेऊ धारण किया, और जंगलों में भटकते रहे, मिशनरियों, जमींदारों और अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ आंदोलन किये ..... उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और जेल में धीरे–धीरे उन्हें ज़हर देकर मार दिया गया। इस किताब में गाय, राम–सीता और हिन्दू देवी देवताओं के बारे में भजन भी हैं।

जाँच समिति ने पाया कि झारखंड शिक्षा का सांप्रदायिकरण पाठ्य–पुस्तकों तक ही सीमित नहीं है और एकल विद्यालय के शिक्षक सिर्फ सांप्रदायिक शिक्षा देने तक में ही संतुष्ट नही हैं। सिंहभूम जिले के टाटानगर ब्लाक के एकल विद्यालय को भेंट के दौरान जाँच समिति को एक शिक्षक (मन्ने सिंह कादीयान) ने बताया कि किस तरह उसने और दूसरे शिक्षकों के साथ मिल कर 2002 में आधे तैयार गिरिजाघर को नष्ट किया। उसने ये भी बताया कि किस तरह सत्तारूढ़ सरकार ने उसके खिलाफ लगाये आरोप वापस लिये।

गुजरात में गोधरा कांड की जाँच कर रहे नानावटी–शाह कमीशन के सामने भा.ज.पा. और वि.हि.प. के कार्यकर्ताओं के बयान से साफ साबित होता है कि भाजपा–संघ परिवार ने प्रायोजित जनसंहार करने के लिये झूठ, फरेब और अफवाहों का सहारा लिया। उन्होंने माना कि उनके पास न कोई सूचना थी और न ही कोई सबूत कि गोधरा में गाड़ी में आग पाकिस्तान आई.एस.आई. द्वारा साजिश के तहत लगाई गयी थी। उन्होंने कहा कि उनका ये निष्कर्ष अखबारों में छपी खबरों पर आधारित था।

गुजरात भाजपा के प्रवक्ता नलिन भट ने माना कि पार्टी के पास इस तरह की कोई सूचना नहीं थी कि साबरमती एक्सप्रेस के एस–6 कोच में आग लगने से पहले ज्वलनशील पदार्थ बाहर से फेंका गया था। कुछ यात्रियों ने ही उन्हें बताया था कि ज्वलनशील पदार्थ बाहर से फेंका गया था।

विहिप के ज्वाइन्ट सेक्रेटरी कौशिक मेहता ने बताया कि उन्होंने उन टेलीफोन नम्बरों की कोई जांच नहीं की जिनसे तथाकथित तौर पर पाकिस्तान फोन किया गया था। उन्होंने ये माना कि विहिप ने गोधरा कांड के बाद हुए जनसंहार का कभी भी निषेध नहीं किया।

पिछले साल रेलमंत्रालय द्वारा गठित बनर्जी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि गोधरा हादसा किसी साजिश का नतीजा नहीं था। ये एक दुर्घटना थी। कोच–6 में गोधरा रेलवे स्टेशन पर आग बाहर से नहीं लगाई गई बल्कि अंदर से ही लगी। कमेटी ने इसका कारण डिब्बे में कारसेवकों या किसी अन्य यात्री द्वारा खाना पकाने अथवा धुम्रपान करके सिगरेट, बीड़ी के जलते टुकड़े फेंकना माना है। रिपोर्ट ने आग का कारण बाहर से पेट्रोल फेंकना या शॉर्ट सर्किट होना नहीं माना है। कमिटी के इंजीनियर सदस्यों के मुताबिक प्लेटफॉर्म से भीड़ द्वारा जलता हुआ कपड़ा अंदर फेंकने से आग लग सकती है पर जलते हुए कपड़े को खिड़की में लगी सलाखों के बीच से पार होकर अंदर रखे सामान और बैठे यात्रियों के ऊपर से आना होगा जो मुमकिन नहीं है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि स्थानीय दमकल कर्मचारी मौके पर देर से पहुंचे और उनके पास ज़रूरी उपकरण तक नहीं थे। रेल सुरक्षा आयोग ने मामले की जांच के अपने वैधानिक दायित्व तक को पूरा नहीं किया। रिपोर्ट के मुताबिक कोच एस–7 का भी कुछ हिस्सा आग की चपेट में आकर जल गया था। यह इस दुर्घटना का महत्वपूर्ण प्रमाण था, लेकिन उसे सुरक्षित रखने के बजाय उसे अहमदाबाद ले जाकर कबाड़ में बेच दिया गया। बनर्जी कमेटी ने तत्कालीन रेल मंत्री और रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष के मौके पर न जाने को भी गलत बताया है।

बनर्जी समिति रिपोर्ट का फरवरी के विधानसभा चुनावों में राजनैतिक इस्तेमाल किये जाने के संदर्भ में चुनाव आयोग ने कहा 'अगर एक राजनीतिक दल ने कानून एवं आचार संहिता के पालन का आश्वासन दिया है तो हम उससे इसके पालन की अपेक्षा रखते हैं। लेकिन अगर उसका वादा सिर्फ कागज़ों तक सीमित है तो फिर हम हस्तक्षेप करेंगे और सख्त कार्रवाई करेंगे।' सभी जानते हैं कि वर्तमान मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एस. कृष्णमूर्ति जो अब अवकाश प्राप्त कर चुके हैं, को भाजपा–राजग सरकार ने नियुक्त किया था। मुख्य चुनाव आयुक्त का ये कहना है कि क्योंकि भाजपा और जद (यू) ने लिखित शिकायत की है इसलिये उसे अपना रुख बताना पड़ा। संविधान के मुताबिक चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों को नियंत्रित करने का दायित्व या अधिकार नहीं है। मुख्य चुनाव आयुक्त किस हद तक भाजपा–राजग की विचारधारा में विश्वास रखता है यह बात मुख्य चुनाव आयोग के अपने अधिकारों और दायित्वों की भाजपा–जद (यू) के कहने पर, अपनी परिधि तोड़ने से साबित हो जाती है।

अप्रैल में साबरमती एक्सप्रेस की मालगाड़ी से टक्कर हो जाने के बाद रेल मंत्री लालू प्रसाद पर वड़ोदरा में हुए हमले पर आई.बी की रिपोर्ट के मुताबिक लालू प्रसाद पर आरएसएस, विहिप और बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने हमला किया था। आइ.बी. की रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि अगर लालू प्रसाद के आने की खबर पहले से होती तो यह हमला और भी गंभीर हो सकता था। केन्द्रीय गृह मंत्रालय ने गुजरात सरकार को बताया है कि गुजरात पुलिस केन्द्रीय मंत्री को सुरक्षा प्रदान करने में पूरी तरह नाकामयाब रही है। गुजरात सरकार की अफसरशाही के सांप्रदायिकरण को देखते हुए ये कोई ताज्जुब

की बात नहीं है कि गुजरात के चीफ सेक्रेटरी सुधीर मनकड ने रेलमंत्री लालू प्रसाद यादव पर पथराव की घटना से इंकार किया है। सरकार ने इस बात से भी इंकार किया है कि इस हमले में किसी संगठन विशेष का हाथ था। मनकड ने कहा है कि घायलों और मृतकों के रिश्तेदारों ने रेलमंत्री पर आइसक्यूब और पानी की थैलियां फेंकी थी। वड़ोदरा के पुलिस कमिश्नर के मुताबिक भी उसने किसी को पत्थर फेंकते हुए नहीं देखा। हालांकि घटना के बाद पुलिस में जो एफ. आई. आर दाखिल की गयी है उसमें ये माना गया है कि रेलमंत्री पर पत्थर फेंके गये जिसकी वजह से कार का पिछला हिस्सा टूट गया।

केंद्र सरकार कहीं इस घटना की जाँच के लिये न्यायिक जाँच समिति का गठन न कर दे इससे बचने के लिये गुजरात सरकार ने गुजरात हाई कोर्ट के रिटायर्ड जज एन. बी. पटेल की एक सदस्यीय न्यायिक जाँच समिति का गठन किया है। 2004 में भी गुजरात सरकार ने इससे बचने के लिये नानावटी–शाह कमीशन की टर्म्स ऑफ रेफरेंस बढ़ाकर भी यही किया था। गुजरात सरकार की तरह भाजपा ने भी इंकार किया है कि लालू प्रसाद पर पथराव किया गया।

गोवा में जब पारीकर सरकार अल्पमत में आ गयी तो अपने को 'नैतिक' और 'दूसरी पार्टियों से अलग' कहने वाली भाजपा ने इस्तीफा देने के बजाय पहले विधायकों को खरीदने की कोशिश की और जब नाकामयाब हो गये तो स्पीकर का इस्तेमाल किया। इसी दल–बदल और खरीद–फरोख्त के बीच गोवा में राष्ट्रपति शासन लगाया गया। झारखंड में जिस तरह से स्पीकर ने विश्वासमत पास किया वो भी अपने आप में अलोकतांत्रिक है। बिहार के राज्यपाल ने कहा है कि भाजपा वहां विधायकों को खरीदने की कोशिश कर रही थी।

देश के अंदर भाजपा का सांप्रदायिक और अल्पसंख्यक विरोधी चरित्र एक बार फिर, बाबरी मस्जिद विध्वंस में प्रेस और मीडिया द्वारा प्रचारित भाजपा के उदारवादी चेहरे अटल बिहारी वाजपेयी के भाषण की सीडी से सामने आया। विध्वंस के एक दिन पहले अटल बिहारी वाजपेयी ने अपने भाषण में मस्जिद की जगह समतल करने की बात कही थी। ये सीडी **आऊटलुक साप्ताहिक** ने अपने फरवरी के अंक में जारी की। मुरली मनोहर जोशी ने पाँचजन्य को अप्रैल में दिये एक साक्षात्कार में कहा, 'आर.एस.एस.–भाजपा में से कोई भी बाबरी मस्जिद विध्वंस से दुखी नहीं है।'

भाजपा एक सांप्रदायिक, फासीवादी और हिंदुत्ववादी पार्टी है ये अंतराष्ट्रीय स्तर पर भी साबित हो गया है। 17 मार्च को अमरीकी सरकार की एक सरकारी इकाई–कमीशन ऑन इंटरनेशनल रिलीजियस फ्रीडम ने एक प्रेस नोट जारी किया जिसमें कहा गया कि यू.एस. कमीशन ऑन इंटरनेशनल रिलीजयस फ्रीडम (यू.एस.सी.आई.आर.एफ.) भारत के गुजरात राज्य के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी के अमरीका के आगामी विजिट पर अपनी चिन्ता प्रकट करती है। तीन साल पहले एक गाड़ी में आग लगने के बाद जिसमें 58 हिंदुओं की मौत हो गयी थी, हिंदुओं ने सारे राज्य में हजारों मुसलमानों का कत्ल किया, कई सौ मस्ज़िदें तोड़ी गयीं; मुसलमानों के व्यापार, उनकी दुकानें और घर लूटे गये और जलाये गये और इस जनसंहार में 2000 मुसलमानों को मारा गया। गुजरात के मुख्यमंत्री तब नरेन्द्र मोदी थे और आज भी वही मुख्यमंत्री हैं।

अमरीकी हाऊस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव में एक सदस्य जॉन कोनीयर्स ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें कहा गया कि मोदी ने गुजरात की पाठ्य पुस्तकों में नाज़ीवाद का गुणगान करवाया और इसलिए मोदी ने धार्मिक स्वतंत्रता के मूलभूत अधिकार का उल्लंघन किया है।

अमरीका ने मोदी का टूरिस्ट वीज़ा रद्द करके और डिप्लोमेटिक वीज़ा नकार, अंतराष्ट्रीय स्तर पर साबित कर दिया है कि गुजरात जनसंहार मुख्यमंत्री मोदी और मोदी सरकार द्वारा प्रायोजित और भाजपा–एनडीए सरकार द्वारा समर्थित था।

यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की रिपोर्ट से पहले भारत के (नीचे लिखे) मानवाधिकार संगठनों और सिटीजन्स ने अपनी जाँच में यही निष्कर्ष पाया। **राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग** की रिपोर्ट (मई 31, 2002); **चुनाव आयोग** का गुजरात सरकार द्वारा स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने में अयोग्यता का आदेश (अगस्त 16, 2002); **पीपुल्स यूनियन आफ डेमोक्रेटिक राइट्स,** देहली (मई, 2002); **राइट्स एंड रोंग्स** : आइडल बाई फायर इन द किलींग फील्डस ऑफ गुजरात – आकार पटेल, दिलीप पडगाँवकर और बी. जी. वर्गीस; ह्यूमन राइटस वाच रिपोर्ट के निष्कर्ष : **वी हैव नो आर्डर्स टू सेव यू ? स्टेट पार्टीसीपेशन एन्ड कम्पलिसीटी इन कम्यूनल वायलेंस इन गुजरात** (अप्रैल, 2002); ब्रिज स्वाइन और सोमनाथ वत्स की **गुजरात जनसंहार पर रिपोर्ट** (हिमल, मार्च–अप्रैल, 2002); क्म्यूनल कम्बेट की रिपोर्ट **'जिनोसाइड 2002'** (मार्च–अप्रैल, 2001); सिद्धार्थ वर्द्धराजन की किताब **'गुजरात : मेकिंग ऑफ ए ट्रेजेडी'** (पेंगवीन, 2002); और कर्न्सन्ड सिटीजन्स की रिपोर्ट : **क्राइम एगेन्सट ह्यूमैनिटी : एन इन्क्वायरी इन्टू द कार्नेज इन गुजरात** – इन सबने पाया कि गुजरात जनसंहार नरेन्द्र मोदी और इसकी सरकार द्वारा प्रायोजित था अैर केन्द्रीय सरकार द्वारा समर्थित था। गुजरात के पुलिस अफसर श्रीकुमार ने अपने हलफनामे में साफ कहा है कि राज्य के मुख्यमंत्री और अफसरशाही इस जनसंहार में शामिल थे।

सबसे ताज़ा सबूत है आर.एस.एस. प्रचारक और स्वयंसेवक

और गुजरात के भूतपूर्व गवर्नर (राज्यपाल) सुंदर सिंह भंडारी ने, साप्ताहिक आऊटलुक (हिन्दी) को दिये गये एक इंटरव्यू में साफ–साफ कहा है कि गुजरात जनसंहार राज्य सरकार द्वारा प्रायोजित और केंद्र सरकार द्वारा समर्थित था। उनका कहना है कि अगर केंद्र और राज्य सरकार वक्त पर एक्शन लेती तो गुजरात जनसंहार बच सकता था। इसी तरह भूतपूर्व राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने भी एक इंटरव्यू में कहा है कि वाजपेयी सरकार ने सेना भेजने की बात नहीं मानी।

यह एक विडम्बना है कि जो पार्टी और मुख्यमंत्री भारतीय संविधान में विश्वास नहीं रखते और जिस पार्टी के प्रधानमंत्री ने मुख्यमंत्री को 'राजधर्म' पालन करने की सलाह दी थी और अपनी पार्टी के गोवा अधिवेशन में ये कहा था कि हर एक्शन का रिएक्शन तो होता ही है वही पार्टी संविधान और देश की इज्ज़त की दुहाई दे रही है। आज अचानक मोदी को ये याद आया कि वे जन निर्वाचित मुख्यमंत्री हैं। इसी जन निर्वाचित मुख्यमंत्री ने अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देने की संवैधानिक ज़िम्मेदारी को जान बुझकर नहीं निभाई और अल्पसंख्यकों पर हमले जारी रहने दिये।

यह बड़े ताज्जुब और चिंता की बात है कि कांग्रेस के नेतृत्व वाली यू.पी.ए. सरकार ने मोदी जैसे सांप्रदायिक और फासीवादी मुख्यमंत्री के वीज़ा नकार पर अपनी चिंता ही नहीं ज़ाहिर की, साथ ही अमरीका से वीज़ा देने के लिये दोबारा से विनती की जिसे अमरीकी सरकार ने दोबारा से नकार दिया। कांग्रेस पार्टी हमेशा से धर्मनिरपेक्षता की पक्षधर रही है पर मोदी के वीज़ा नकार पर काँग्रेस पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार सांप्रदायिकता का पक्ष लेती नज़र आ रही है। मई 2004 में लोकसभा चुनावों में धर्मनिरपेक्षता बनाम सांप्रदायिकता, लोकतंत्र बनाम फासीवाद मुख्य मुद्दों में थे। दलित, युवक, महिला, अल्पसंख्यक और मजदूरों ने कांग्रेस पार्टी को इन्हीं मुद्दों पर वोट दिया था। कांग्रेस पार्टी के प्रधानमंत्री का अमरीका से सांप्रदायिक और नाजीवादी मुख्यमंत्री मोदी को वीज़ा देने की पैरवी अपने आप में सांप्रदायिक, फासीवादी और संविधान में विश्वास न रखने वाली पार्टी भाजपा–आर.एस.एस. का समर्थन है। यूपीए सरकार लालू प्रसाद यादव के मामले में धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र का साथ देती नज़र नहीं आ रही है। यूपीए सरकार का ये कहना कि केंद्रीय मंत्री को अपने दौरे की राज्य सरकार को पहले से सूचना देनी चाहिये थी, गुजरात के सांप्रदायिक राज्य का समर्थन दिखाता है खासकर सी.बी.आई की रिपोर्ट की पृष्ठभूमि में। यू.पी.ए. सरकार के गुजरात सरकार के प्रति नये रुख के बावजूद भी भा.ज.पा. एन.डी.ए. ने पार्लियामेन्ट का बहिष्कार जारी रखा है। यूपीए की इस भूमिका से धर्मनिरपेक्ष आंदोलन को बहुत ज़्यादा नुकसान ही नहीं हुआ है बल्कि पीछे हट भी है। साथ ही भाजपा स्वशासित राज्यों में साम्प्रदायिकता का जहर फैला रही है वो चाहे राजस्थान हो, मध्य प्रदेश, झारखंड या फिर छत्तीसगढ़ हो, भाजपा इन राज्यों में दलित, अल्पसंख्यक, महिला विरोधी और सांप्रदायिक राजनीति खुल्लमखुल्ला कर रही है। यूपीए सरकार इन राज्य सरकारों को संविधान की धारा 356 के तहत बर्खास्त न करके अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी नहीं निभा रही है। ये बड़ी फिक्र की बात है। ऐसे में गैरसरकारी धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक ताकतों की ज़िम्मेदारी और बढ़ गयी है। उन्हें इस मुद्दे को लेकर देशव्यापी जनआंदोलन उभारना चाहिये।

मुनासिब कार्रवाई

जब हमला हुआ तो महल्ले में अक़्ल्लीयत[1] (अल्पसंख्यक) के कुछ लोग क़त्ल हो गए
जो बाक़ी बचे, जानें बचाकर भाग निकले–एक आदमी और उसकी
बीवी अलबत्ता अपने घर के तहख़ाने में छुप गए।
दो दिन और दो रातें पनाह याफ़्ता[2] (शरण लिए हुए, छुपे हुए) मियाँ–बीवी ने हमलाआवरों
की मुतवक्के–आमद[3] (आने की आशा) में गुज़ार दीं, मगर कोई न आया।
दो दिन और गुज़र गए। मौत का डर कम होने लगा। भूख
और प्यास ने ज़्यादा सताना शुरू किया।
चार दिन और बीत गए। मियाँ–बीवी को जिंदगी और मौत से
कोई दिलचस्पी न रही। दोनों जाए पनाह[4] (बचाव के स्थान) से बाहर निकल आए।
ख़ाविंद ने बड़ी नहीफ़[5] (हल्की धीमी) आवाज़ में लोगों को अपनी तरफ मुतवज्जेह (ध्यान खींचा)
किया और कहा : ''हम दोनों अपने आपको तुम्हारे हवाले करते हैं...हमें मार डालो।''
जिनको मुतवज्जेह किया गया था, वह सोच में पड़ गए: ''हमारे धरम में तो जीव–हत्या पाप है...''
उन्होंने आपस में मशवरा किया और मियाँ–बीवी को मुनासिब कार्रवाई
के लिए दूसरे मुहल्ले के आदमियों के सुपुर्द कर दिया।

सआदत हसन मंटो

नौटंकी – एक साझी विरासत

डॉ. योगेश भटनागर

संस्कृति को हम विभिन्न आचरणों और व्यवहारों का प्रदर्शन मानते हैं। दूसरे शब्दों में एक रिवाज़ के अंदर निहित अर्थों को भी संस्कृति माना जाता है। नौटंकी बहुत सी सांस्कृतिक विधाओं में से एक विधा है जो विभिन्न सामाजिक समुदायों के बीच आज अपनी जगह बनाए हुए है। हर सामाजिक समुदाय के अपने स्वहित होते हैं और मंचन के दौरान दी गयी सूचनाओं को ग्रहण करने के भी अपने–अपने तरीके होते हैं। सभी जानते हैं कि एशिया के अन्य भागों की तरह भारत भी थियेटर, कथा–कथन, नकल, कविता, गीत और नृत्य इन सब के विविध आयामों को अपने अंदर समाए हुए है। पूर्व आधुनिक भारत में भारतीय थियेटर की कई विधाएं धर्म से जुड़ी थीं यानि कि धार्मिक कर्मकाण्डों या प्रवचनों से। नौटंकी जैसी धर्मनिरपेक्ष और आम संस्कृति से जुड़ी थियेटर की विधा भारत की साझी विरासत की जीवंत प्रतीक है। हालांकि राजनैतिक सत्ता, कट्टरपंथी और समाज का विशेष घटक जो समाज में एक सम्मानित स्थान पाना चाहता था, इन सबने नौटंकी और इस जैसी आम संस्कृति से जुड़ी कई विधाओं के पनपने में काफी रुकावटें पैदा कीं। इस सबके बावजूद धर्मनिरपेक्ष थियेटर भारत में काफी प्रचलित और मशहूर रहा। खासकर पिछले दो सौ सालों में नौटंकी और इस जैसी आम–संस्कृति से जुड़ी थियेटर की विधाओं ने इस दौर की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में अहम भूमिका अदा की है। नौटंकी और थियेटर की अन्य धर्मनिरपेक्ष विधाओं का एकमात्र उद्देश्य केवल मनोरंजन मात्र ही नहीं रहा है। मनोरंजन के साथ–साथ, भारतीय पारम्परिक थियेटर, जैसे नौटंकी, अपने दर्शकों को विश्व की सभी घटनाओं को भी अखबार, सिनेमा और टीवी की तरह बताते हैं। सीमित साक्षर और सीमित तकनीक वाले समाज में, थियेटर शोज़ जिनमें महाकाव्यों के गायन, गीत, लोककथाएं आदि शामिल हैं, संप्रेषण का एक मात्र ज़रिया होते हैं। ज़ाहिर है ऐसे पूर्व आधुनिक भारत में यही विधाएं संप्रेषण (कम्यूनिकेशन) के लिए ज़्यादा प्रचलित थीं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि भारतीय थियेटर की पारम्परिक विधाएं विश्व की घटनाओं और विचारों को आम लोगों तक पहुंचाने के साथ–साथ संप्रेषण का काम भी करती थीं। संप्रेषण (कम्यूनिकेशन) हम जानते हैं एक अर्थपूर्ण सांस्कृतिक समाज बनाने में मदद करता है। संप्रेषण, ज़ाहिर है, एक प्रतीकात्मक प्रक्रिया है जिसके दौरान यथार्थ पैदा किया जाता है, उसे संभाला जाता है, और उसे बदला जाता है। इस नज़रिए से देखा जाए तो संप्रेषण के माध्यम न केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हैं साथ–साथ यथार्थ को जन्म भी देते हैं और इस तरह संप्रेषण के अध्ययन का मतलब है इस उपस्थित सामाजिक प्रक्रिया का विश्लेषण जिसके तहत प्रतीकात्मक ढांचा बनाया गया है और उसका इस्तेमाल किया गया है। इसी संदर्भ में कहा जा सकता है कि नौटंकी का भी उत्तर भारत की संस्कृति को आज का प्रारूप देने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दूसरे अन्य सांस्कृतिक व्यवहारों और आचरणों के साथ नौटंकी ने अपना एक शब्दकोष बनाया जिसके माध्यम से इसने समाज के सदस्यों को सामाजिक अनुभव और यथार्थ से अवगत कराया। इस तरह नौटंकी ने संप्रेषण को जन समुदाय से संवाद का रूप दिया। नौटंकी की साझी विरासत को समझने के लिए हमें समझना होगा कि नौटंकी का थियेटर की विभिन्न विधाओं से क्या रिश्ता है साथ ही यह भी कि नौटंकी का गैर थियेटरिकल विधाओं जैसे लोक कथाओं, लोक गीतों, दंतकथाओं और महाकाव्यों से क्या रिश्ता है।

बीसवीं सदी के भारत में लोक–नाट्य कला की कई विधाएं मौजूद थीं जिनमें से बहुत सारी तो आज भी भारत के बाहर जानी भी नहीं जातीं। हर प्रदेश में नाटक (थियेटर) की अपनी परम्परा थी और कहा जा सकता है कि भारत के हर ऐतिहासिक काल में थियेटर मौजूद था। नौटंकी थियेटर की एक ऐसी विधा है जिसका ऐतिहासिक विकास ज़्यादा पुराना नहीं है। नौटंकी आम जनता की बोलियों, जिनको विकसित होने में कई सौ साल लगे, का इस्तेमाल करती है। नौटंकी प्रमुखतः उत्तर भारत की विधा है। इसमें अठारहवीं सदी की बोली का इस्तेमाल किया जाता है। खड़ी बोली जैसा हम जानते हैं उन्नीसवीं सदी में लिपिबद्ध

की गयी और आज इस बोली ने दो साहित्यिक भाषाओं : हिन्दी और उर्दू का रूप ले लिया है। यह भाषाएं मूलतः उत्तर भारत में बोली जातीं हैं।

उत्तर भारत में दो लोक–नाट्य विधाएं प्रचलित हैं – धर्मनिरपेक्ष नौटंकी और नकल और दूसरी धार्मिक–रामलीला। उत्तरप्रदेश, राजस्थान और पंजाब में खेले जाने वाली नौटंकी एक संगीत नाटक है। अगर नौटंकी शब्द की व्युत्पति को देखें तो कुछ इतिहासकारों के मुताबिक शहज़ादी नौटंकी नाम के संगीत नाटक से नौटंकी शब्द निकला। कुछ के मुताबिक नाटकी से नौटंकी बना और कुछ के मुताबिक इस संगीत नाटक का टिकट नौ टक्के था इसलिये नौटंकी शब्द निकला।

नौटंकी शौर्य–गाथाओं के माध्यम से विकसित हुईं। शौर्य गाथा–गायक अपने गायन के दौरान विभिन्न किरदारों की भावनाएं जगाते थे। धीरे–धीरे मूल गायक के साथ–साथ अन्य और गायक भी नौटंकी में हुए। नौटंकी में अक्सर लोक कथाओं में पाये जाने वाली सन्तों, लूटेरों, राजाओं, प्रेमियों और शूरवीरों की गाथाएं गायी जाती हैं।

नौटंकी कमर जितने ऊंचे प्लेटफार्म पर, जो चारों तरफ से दर्शकों से घिरा होता है, खेली जाती है। सरस्वती, कृष्ण या शिव या किसी और भगवान वंदना के बाद रंगा (निर्देशक) गीत गाकर अन्य कलाकारों को स्टेज पर बुलाता है। नाटक अक्सर राजदरबार, लूटेरे की गुफा या राजकुमारी के महल में शुरू होता है। अचानक एक ऐसी घटना घट जाती है जो दृश्य को बदल देती है।

नौटंकी में सभी कलाकार स्टेज पर आर्केस्ट्रा के पास बैठे होते हैं और उनका नम्बर आने पर स्टेज पर आते हैं। अगर नाटक गांव के चौराहे या शहर की गलियों में खेला जाता है तो एक घर की बाल्कनी और उसकी खिड़की में राजकुमारी बैठायी जाती है। नाटक का नायक (हीरो) गाना गाते हुए सीढ़ी लगाता है और राजकुमारी से मिलने राजमहल में जाता है। नौटंकी में प्रकृति का पूरा फायदा उठाया जाता है। संगीत वाद्यों में हारमोनियम, सारंगी, क्लरनेट और नगाड़ा प्रमुख तौर पर इस्तेमाल किये जाते हैं।

'भइन्त' (वंदना) में रंगा एक दोहा गाता है। इसके बाद चौबोला होता है। दौड़ गायन के साथ चौबोला गायन खत्म होता है। दौड़ की आखिरी लाइन के साथ ही नगाड़ा ज़ोर से बजाया जाता है। नगाड़े की एक चोट के बाद दूसरा कलाकार जवाब देता है। कलाकार अपना गाना धीमी लय में गाता है और हर शब्द के मायने बताता है। अगर दर्शक ज़्यादा होते हैं तो वो हर तरफ जाकर एक एक लाइन गाता है। एक ही लाइन बार–बार दोहराये जाने से मनोरंजन बढ़ जाता है। चौबोला गायन के दौरान ढोल बजाया जाता है जो जोश पैदा करता है। साथ ही गायक अब नाचना भी शुरू कर देता है। उस वक्त ऐसा लगता है मानों कोई घुड़सवार चाबुक मार–मारकर घोड़े को सरपट दौड़ा रहा हो। चौबोला और बहर–ए–तवील गीत गाने के रूप हैं। बहर–ए–तवील एक लम्बी छंद प्रधान कविता होती है। हर नये गायक के साथ गति तेज होती जाती है। जहां तक छंदों का सवाल है ज़्यादातर लावणी, दादरा, ख्याल और बहर–ए–तवील इस्तेमाल होते हैं। पारम्परिक नौटंकी में पुरुष ही महिलाओं का रोल करते हैं।

पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष नौटंकी हिन्दू–मुस्लिम लोक संस्कृतियों का अभूतपूर्व संगम है और इनकी साझी ऊर्जा दिखाती है। कलाकार दोनों ही समुदायों से आते हैं और हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं का इस्तेमाल होता है। धार्मिक गाथाओं को भी नौटंकी ने धर्मनिरपेक्ष रूप दिया है। नौटंकी ब्रज, हिंदी और राजस्थानी भाषा के साथ–साथ उर्दू भाषा में भी लिखी जाती थी और शास्त्रीय रागों में भैरवी, बिलावल, पीलू और खम्माज रागों का इस्तेमाल होता है।

नौटंकी में शौर्य गाथाओं के अलावा, धार्मिक और प्रेम गाथाएं भी शामिल हुईं। मिसाल के तौर पर मशहूर नौटंकियां इस तरह से हैं; शौर्य गाथाएं, ईमानदारी और वफा की कहानियां: 'टीपू सुल्तान', 'अमर सिंह राठौर', 'पृथ्वीराज चौहान', 'रानी दुर्गावती' और 'पान'; धार्मिक गाथाएं: 'राम बनवास', 'श्राव मोरध्वज', 'राजा हरिश्चंद्र'; प्रेम गाथाएं : 'त्रिया चरित्र', 'शाही लकड़हारा', 'सुल्ताना डाकू', 'सब्ज़परी गुलफाम' और 'सियाह पोश'।

नौटंकी की भाषा आमजन की भाषा होती थी जिसमें उर्दू और हिन्दी दोनों का पुट होता था। सिर्फ शुरू की वंदना या मंगलाचरण क्लिष्ट संस्कृत आधारित हिन्दी में होती थी। अक्सर लेखक ब्रज और राजस्थानी मिलाकर लिखते थे। पहनावा किसी खास सदी का नहीं होता था। जो पुरुष महिलाओं का रोल करते थे उनका मेक अप काफी भड़कीला होता था। मुंशी जी या जोकर पैबन्द लगी रंग–बिरंगी कमीज़ और पायजामा पहनता था। मुंशी जी नौटंकी के दौरान कभी भी आ सकते थे और सीरीयस मूड को हल्का करने का काम करते थे।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि नौटंकी उत्तर भारत की विधा है इसके पांच मुख्य अखाड़े, स्कूल या परम्पराएं हैं: हाथरस, मुज़फ्फरनगर, सहारनपुर, कानपुर और ब्रज। इन पांच अखाड़ों में हाथरस और कानपुर प्रमुख परम्पराएं हैं। हाथरस परम्परा संगीत और कामुक अभिनय के लिये मशहूर है। कानपुर परम्परा ज़्यादा सरल है और संगीत जरूरत के

मुताबिक डाला जाता है। कानपुर परम्परा में वंदना रंगा द्वारा गायी जाती है। आज कानपुर परम्परा बहुत ही ज़्यादा व्यावसायिक हो गयी है इसलिये महिला अदाकारों को आकर्षित करती है।

कुछ लोक नाट्य विधाएं नौटंकी से काफी मिलती जुलती हैं जैसे : आगरा का 'भगत', राजस्थान का 'ख्याल' और मध्य प्रदेश का 'मंच'। 'भगत' चार सौ साल पुरानी संगीत नाटक विधा है। शुरू में इसका रूप नाटकीय कीर्तन हुआ करता था। 'भगत' का मतलब 'पुजारी' होता है और ये 'भगत' वैष्णव संप्रदाय से संबंध रखते हैं। आज भी 'भगत' अखाड़े मथुरा, वृंदावन और आगरा में पाये जाते है। मंडली के प्रमुख को खलीफा कहा जाता है। मंडली की सदस्यता खलीफा की सिफारिश पर ही मिलती है। नया शार्गिद गुरु को पगड़ी भेंट करता है और पुराने सदस्यों को मिठाई। 'भगत' में सारे एक्टर पुरुष होते हैं। इसमें उर्दू, फारसी, ब्रज, हिन्दी और राजस्थानी भाषा के साथ साथ कभी–कभी अंग्रेजी भी इस्तेमाल की जाती है। 'भगत' के लिये स्टेज, फूलों गुलदस्तों और रंगीन पर्दों जिन पर धार्मिक प्रतीक छपे होते हैं, से सजाया जाता है। कोने में घी का एक दिया जलाया जाता है। नगाड़े और दूसरे संगीत वाद्यों के शोर में सरस्वती, लक्ष्मी या काली वंदना गायी जाती है। नाटक गणेश के आगमन से शुरू होता है। गणेश के जाने के बाद गुरुओं और दूसरे पूज्यवरों की प्रशंसा में एक 'भयन्त' गाया जाता है। इसके बाद 'दौड़' गायी जाती है। इसके बाद 'रंगा' स्टेज पर आता है और नाटक का विषय बताता है। नाटक सुबह तक चलता है। नाटक 'ज्योति' शान्ति से खत्म होता है। कलाकार ड्रैसिंग रूम में 'भयन्त' गाते है और सभी का शुक्रिया अदा करते हैं। इसके बाद ही गुरु दिये की लौ बुझा देता है।

ख्याल राजस्थान का संगीत नाटक है। इसमें प्रेमगाथाएं : 'लैला मजनू', 'पठान शहज़ादी', 'सुल्तान निहालदे', 'ढोला मारू'; शौर्य गाथाएं : 'अमर सिंह राठौर', 'बालाजी', 'पृथ्वीराज चौहान' और 'तेजा जी' और धार्मिक गाथाएँ : 'राजा भतृरी', 'नरसी' और 'द्रोपदी स्वयंवर' खेले जाते हैं। दोहा और चौबोला दो छंद इस्तेमाल होते हैं। शास्त्रीय राग और रागनियों में प्रमुखतः जयजयवन्ती, असावरी और भांड़ का इस्तेमाल होता है। ख्याल की कई परम्पराएं हैं, हर परम्परा शहर, लेखक, जाति समुदाय या अभिनय शैली के नाम से जानी जाती है जैसे जयपुरी ख्याल, अभिनय ख्याल, गधस्य ख्याल और अलीबख्श ख्याल।

मंच मध्य प्रदेश के मालवा प्रदेश का संगीत नाटक है। मंच शुरू होने से पहले झंडा या डंडा गाड़ा जाता है। अभिनेता इसकी पूजा करता है। स्टेज चारों तरफ से खुला होता है। संगीतवादक एक तरफ बैठे होते हैं। नाटक, सभी कलाकारों के ड्रैस और मेकअप में आने और आँखे बंद किये, दर्शकों के अभिवादन से शुरू होता है। भिश्ती पानी छिड़कता है और स्टेज को पवित्र करता है। फराश के बाद चोबदार आता है और कलाकारों को निमंत्रण देता है। ज्यादातर एक्टर करखनदार जाति के जैसे सुतार, माली, और दर्ज़ी आदि होते हैं। वैसे तो ये मालवी भाषा में खेला जाता है पर आजकल हिंदी में भी खेला जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है उत्तर भारत में नौटंकी हिन्दी और उर्दू दोनों में की जाती है एक प्रादेशिक विधा होने के नाते इसकी तुलना अन्य प्रादेशिक भाषाओं के थियेटर से भी की जा सकती है जैसे बंगाल की 'जात्रा' (बंगला में), महाराष्ट्र का 'तमाशा' (मराठी में) या फिर गुजरात की 'भवाई' (गुजराती में)। नौटंकी में मूलतः खड़ी बोली हिन्दी या उर्दू का इस्तेमाल होता है पर और प्रादेशिक बोलियों, जैसे ब्रज, अवधी और भोजपुरी का इस्तेमाल भी, खासकर गीतों में, होता है। 'जात्रा', 'तमाशा' और अन्य प्रादेशिक विधाएं अपनी अपनी परिस्थितियों में पनपीं इसलिए हर प्रादेशिक थियेटरिकल विधा ने अपनी अपनी विशेषताएं भी अपनायीं। इन सबमें भाषा के अलावा, पहनावा, ज़ेवर, मेकअप और सिर ढकने के तरीके वगैरह सभी अपनी प्रादेशिक विशेषताएं लिए हुए हैं। प्रादेशिक छाप के सिवा इन थियेटरों में कई विशेषताएं एक समान हैं: ये सभी संगीत और नृत्य पर ज़ोर देते हैं, इनका बखान काव्यात्मक होता है, कविता का ज़्यादा इस्तेमाल करते हैं, कभी–कभी गद्य का भी इस्तेमाल कर लेते हैं, इनमें अभिनय, हाव–भाव और पहनावे में समानता है, मंच बहुत ही अव्यावसायिक और अनौपचारिक होता है, किसी तरह के सेट नहीं होते। इन प्रादेशिक भाषाओं में इस विधा को कई लोगों ने भारत के पारम्परिक थियेटर का भी नाम दिया है क्योंकि ये थियेटर लोक–नाट्य से अलग विधा है। एक बात याद रखने की जो है वो ये है कि 'नौटंकी', 'जात्रा' या 'तमाशा' इन सबको शुरू से ही आम जनता का समर्थन प्राप्त था जबकि संस्कृत थियेटर को केवल उच्च वर्ग का। नौटंकी शहर और गांवों दोनों में ही मशहूर थी इसलिए इसको एक जगह विशेष की विधा नहीं माना जा सकता।

बजट 2005–06 और आम आदमी

अमित पोखरीयाल

किसी भी अन्य नीति की तरह देश की वित्त नीति का भी दीर्घकालिक रूप होता है। हर साल बजट में लिए गए निर्णय इसका निर्धारण करते हैं। इसी प्रक्रिया में यह भी पता चलता है कि देश तथा समाज के प्रति सरकार अपने उत्तरदायित्व को कितनी तत्परता से निभाती है और कितनी सूझबूझ से अपने दृष्टिकोण और प्रतिबद्धता को ठोस नीतियों व प्रस्तावों में बदलती है। अनेक जटिलताओं, विषमताओं और विकट समस्याओं से घिरी भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रस्तुत बजट पिछले कई सालों में लिए गए निर्णयों के प्रभावों को झेलने के लिए विवश है।

यही नहीं, भारतीय आर्थिक जगत के अन्य देशों से संबंधों पर भी बजट की गहरी छाप देखी जा सकती है। न केवल सीमा शुल्क, विदेशी मुद्रा नीति, बाहरी निवेश आदि कारकों को बजट में समेटना पड़ता है बल्कि अन्य देशों की सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय तथा गैर–वित्तीय संस्थाओं से संबंधों का निर्धारण भी इसमें प्रतिबिंबित होता है। ऐसे में, मीडिया तथा अखबारों में बजट के विभिन्न प्रस्तावों को लेकर चल रही बहस के बीच हमें इस 'आम बजट 2005–06' के सैद्धांतिक आधार की चर्चा करना बहुत ज़रूरी है ताकि इसके विभिन्न आयामों पर हमारी समझ बन सके।

प्रस्तुत बजट का सैद्धांतिक आधार

बजट में पेश किये गये प्रस्तावों को ध्यान से देखा जाए तो साफ़ हो जाता है कि इनका आधार है "**प्रतिपक्ष का अर्थशास्त्र**" (Supply Side Economy); जिसका प्रतिपादन फ्रांसीसी अर्थशास्त्री ज्यां बैपतिस्त (1767–1832) ने अपनी पुस्तक 'ए ट्रिटाइज़ ऑन पॉलिटिकल इकॉनोमी' (A Treatise on Political Economy, 1880) में किया। ज्यां ने इस किताब में बताया कि अगर अर्थव्यवस्था में सरकार, श्रमिक संघों और उपभोक्ताओं और उत्पादकों के संगठनों का हस्तक्षेप न हो और मजदूरी सहित सब प्रकार की कीमतें लचीली हों तथा यदि सब बाज़ार की शक्तियों द्वारा संचालित हों तो अर्थव्यवस्था स्वतः विनियमित अर्थात अबाध रूप से चलती रहेगी। दूसरे शब्दों में वह संकटमुक्त रहेगी और संतुलन बना रहेगा। वहाँ उत्पादन अपने आप माँग के साथ सामंजस्य बना लेगा।

1970 के दशक से इस सिद्धान्त को पुनः पेश करने के प्रयास शुरू हुए। 1978 में 'द वॉल स्ट्रीट जर्नल' (The Wall Street Journal) के सहयोगी संपादक जुड वान्निस्की ने इसे 'प्रतिपक्ष का अर्थशास्त्र' नाम देकर अपनी पुस्तक 'द वे द वर्ल्ड वर्क्स' (The Way the World Works, 1978) में नये रूप में प्रस्तुत किया। पुस्तक में सरकार की आर्थिक भूमिका को न्यूनतम करने तथा करों को कम करने आदि बातों पर काफ़ी ज़ोर दिया गया। वान्निस्की के अलावा इस सिद्धान्त के पैरोकार और भी कई जानेमाने तथा नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री भी शामिल थे जिनकी अमरीकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन के प्रशासन में गहरी पैठ थी। चूंकि रीगन प्रशासन ने 1980 के दशक में 'प्रतिपक्ष के अर्थशास्त्र' को अपनाया अतः इसे 'रीगोनोमिक्स' (Regonomics) के नाम से भी जाना जाता है।

'प्रतिपक्ष के अर्थशास्त्र' से जो नीतिगत बातें रेखांकित होती हैं वे हैं :

- सरकार का अर्थव्यवस्था में न्यूनतम हस्तक्षेप;
- उपभोक्ता, उत्पादक और श्रम हितों की रक्षा के लिए सरकारी दखल समाप्त करना;
- मुक्त व्यापार और देशी–विदेशी पूंजी के बेरोकटोक आने–जाने का मार्ग प्रशस्त करना;
- सभी प्रकार के आरक्षण और सब्सिडी की समाप्ति और करों की दर को कम करना।
- साथ ही, प्रतिपक्ष का अर्थशास्त्र सरकार द्वारा संपदा और अन्य के असमान बँटवारे को यथासंभव कम करने की मनाही करता है।

कर सुधार किसके लिए ?

अब जरा अपने आम बजट 2005–06 की तरफ़ नज़र डालें तो जहाँ श्रम कानूनों में व्यापक फेरबदल कर मालिकों को अपनी मनमर्जी से मज़दूरों को '**रखने और हटाने**' की (hire and fire) की बात की गयी है तथा '**विदेशी प्रत्यक्ष निवेश**' (Foreign Direct Investment) के रूप में अपेक्षाकृत अधिक विदेशी निवेश की भी बात कही गयी है। इन दो बातों से ही संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) सरकार की आर्थिक नीतियों पर प्रतिपक्ष के अर्थशास्त्र का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। जरा और ग़ौर किया जाए तो पता चलता है कि विदेशी सामान पर तट कर में कमी की गई है, मज़दूरों की माँग घटाने वाली विदेशी मशीनरी के सस्ते आयात की छूट, उद्योगों को बढ़ावा देने के नाम पर बड़ी कंपनियों को भारी रियायतें। पांच लाख से ज़्यादा कीमत वाली कारों के दाम तीस से चालीस हज़ार रुपये तक की कमी और पांच लाख से ज़्यादा कर योग्य आय पर चालीस से पैंतालीस हज़ार रुपये की छूट है। शेयर बाज़ार की सट्टेबाज़ी को बढ़ावा देने व इसके पुर्नगठन पर स्टांप ड्यूटी हटाई गयी है। चीनी के दामों में बेवजह पचास फीसदी का इज़ाफा करके मुनाफाखोरी करने के बावजूद चीनी उद्योगपतियों को कर्ज़ माफ़ी और ब्याज में कमी से नवाजा गया है। और गरीब किसानों को इन 'कर सुधारों' में कर माफी से पूरी तरह दूर रखा गया। उनकी ज़मीन छोटे–मोटे अल्पकालीन कर्ज़ के लिए रेहन रखने और कुर्क करने की जारी कुव्यवस्था यह दर्शाती है कि वित्तीय संसाधनों की कमी का राग अलापने वाली सरकार धनी लोगों के लिए कितनी उदार है।

बजट में प्रस्तावित टैक्स सुधारों की चर्चा से यह जाहिर होता है कि इनका असर देश की अर्थव्यवस्था पर क्या पड़ेगा ? बजट में आयात शुल्क की भारी कमी की गयी है। चुनिन्दा मशीनों और उनके कलपुर्ज़ों पर आयात शुल्क के घटाये जाने से जहाँ सरकार को राजस्व का नुकसान उठाना पड़ेगा वहीं देश के घरेलू निर्यात व उत्पादन पर विपरीत असर पड़ेंगे। राजकोषीय घाटे के बावजूद कंपनियों को मुनाफे पर 35 प्रतिशत से घटाकर 30 प्रतिशत की कर में छूट दी गयी है। लगता है कि '**आम आदमी के साथ**' का नारा देने वाली सरकार के वित्तमंत्री बजट तैयार करते हुए पूंजीपतियों और कॉर्पोरेट जगत को ही 'आम आदमी' मान बैठे हैं। सवाल उठता है कि जब पूंजीपतियों के मुनाफ़े में बेतहाशा वृद्धि हो रही है तो सरकार को कॉर्पोरेट टैक्स और उत्पाद शुल्क के रूप में मिलने वाले राजस्व में कमी क्यों आ रही है। ज़ाहिर है कि यही वह तबका है जो टैक्सों की खुलेआम चोरी कर रहा है। पर इस टैक्स चोरी को रोकने की दिशा में कोई कारगर क़दम अभी उठाया जाना बाकी है।

डेढ़ दशक के उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण (Liberalisation, Privatisation and Globalisation) के कार्यक्रम के बावजूद तथ्य यह है कि आज भी निजी कंपनियों का निवेश राष्ट्रीय आय का महज़ साढ़े पाँच प्रतिशत है। इसके मुकाबले घरेलू और गैर–निगमित क्षेत्र अपनी बचत से कंपनी क्षेत्र के मुकाबले तीन गुना ज़्यादा निवेश और कई गुना ज़्यादा रोज़गार पैदा करते हैं। फिर भी इनकी उपेक्षा बदस्तूर जारी है। धनी लोगों की आमदनी और संपत्ति को बढ़ावा देने की बजटीय नीतियों से एक सीधा सवाल यह उठता है कि दीर्घकाल में ही सही, विषमता घटाना तो दूर, बाज़ार और सरकारी कार्यक्रमों के सम्मिलित प्रभाव से क्या अधिकतर जनता की न्यूनतम आजीविका की पर्याप्त और पुख्ता व्यवस्था भी हो पाएगी ? गरीबी, बेरोज़गारी और गैरबराबरी देश की अधिसंख्य जनता की बदहाली के ही विभिन्न रूप हैं। न्यूनतम साझा कार्यक्रम में वर्णित रोज़गार गारंटी का वादा इन समस्याओं पर प्रभावी चोट करके आम जन को आजीविका की न्यूनतम सुरक्षा प्रदान करने वाला और भविष्य में विकास और सामाजिक संतुलन को गुणात्मक रूप से बदलने में सक्षम कार्यक्रम है तब और जरूरत यह है कि इसी प्रतिपक्ष के सिद्धांत की पृष्ठभूमि में हमें सरकार द्वारा प्रस्तावित रोजगार कार्यक्रम पर भी एक नजर डालनी चाहिए।

संपूर्ण रोजगार का सपना

आम बजट में रोज़गार बढ़ाने के लिए जो प्रावधान किए गये उन्हें देश में वास्तव में रोज़गार बढ़ाने की ज़रूरतों के मद्देनज़र देखा जाना चाहिए। बजट में **राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना** (National Employment Gurantee Scheme) के तहत 11,000 करोड़ रुपये खर्च कर एक करोड़ बेरोज़गारों को वर्ष में कम से कम सौ दिन रोज़गार दिलाने की बात कही गयी है। वित्तमंत्री ने बजट में एक पूर्वानुमान लगाया है कि वर्ष 2009 तक खाद्य प्रसंस्करण में 2.5 करोड़, वस्त्र उद्योग में 1.2 करोड़ और सूचना प्रौद्योगिकी में 70 लाख युवाओं को रोज़गार मिलेगा। इसमें कोई शक नहीं कि भले ही हम स्टॉक मार्केट सूचकांक के बारे में कितनी भी बहस करते रहें लेकिन बढ़ता सूचकांक भी देश में बढ़ती हुई बेरोज़गारी की दर को घटाने में असक्षम है। योजना आयोग के आँकड़ों के मुताबिक देश में लगभग 3.6 करोड़ लोग पूर्ण बेरोज़गार हैं। अन्य क्षेत्रों के बेरोज़गारों

की संख्या जोड़ने पर यह तादाद 7.6 करोड़ हो जाती है। संप्रग (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) सरकार के न्यूनतम साझा कार्यक्रम (Common Minimum Programme) में कहा था कि सरकार फ़ौरी तौर पर राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी कानून (National Employment Guarantee Act) लागू करेगी। इसके तहत प्रत्येक ग्रामीण एवं शहरी ग़रीबों में प्रत्येक परिवार में कम से कम एक व्यक्ति को सौ दिन का रोज़गार कानूनी तौर पर दिया जाएगा।

लेकिन संसद के बजट सत्र में पारित किये जाने के लिए सरकार ने वर्ष 2004 के आखिर में क्या प्रस्तावित किया, **'राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी बिल'** (National Rural Employment Gurantee Bill, 2004)। अतः अब न्यूनतम साझा कार्यक्रम में वर्णित रोज़गार गारंटी सिर्फ ग्रामीण क्षेत्र तक ही सिमटकर रह गयी है और यह भी कहा गया है कि केवल गरीबी रेखा से नीचे (Below Poverty Line) बसर करने वाले ही इसका लाभ उठा पाऐंगे। जिसका मतलब हुआ जिनके पास BPL कार्ड है वे ही इसके पात्र होंगे और देश में BPL कार्ड के पीछे छिपी धांधलियों की ओर से नज़रें फेर ली गयीं हैं, यह जाने बगैर कि फ़ायदा उठाने की बात तो दूर किसी ग़रीब के लिए BPL कार्ड भी बनवाना एक कड़ी मशक्कत की चीज़ है। ऐसे में जहाँ शहरी ग़रीबों के लिए भी कोई पुख़्ता योजना के अभाव में संपूर्ण रोज़गार का नारा तो सपना ही बना रहेगा लेकिन ग्रामीण जनता की तरफ केन्द्रित यह बिल भी उनके जीवन में कोई खास परिवर्तन लाएगा, कहना काफ़ी मुश्किल है।

'रोजगार गारंटी क़ानून' को प्रशासनिक प्रक्रियाओं में लटकाने, उसके कार्यक्षेत्र को सीमित कर उसे बाबूशाही व नेताशाही के हवाले करने के साथ–साथ बजट में इस योजना के लिए वित्तीय आवंटन में नाममात्र का इजाफ़ा साफ़तौर पर यह दिखाता है कि समता, सामाजिक न्याय, जन सबलीकरण जैसे शब्दों को सच्चाई में बदलने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

कहा जाता है कि ये सब लक्ष्य संसाधनों की कमी, देश के विकास की वर्तमान स्थिति, विशाल और तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या, प्रशासनिक व्यवस्था की कमियों और भ्रष्टाचार के कारण संभावना के दायरे के परे हैं। रोज़गार गारंटी योजना को लेकर धनीमानी तबकों तथा उदारीकरण के समर्थकों की नींद जिस कदर उड़ गयी है वह साफ दिखाता है कि ग़रीबों के अधिकारों पर किस तरह की सीमाएं बांध दी जाती हैं। बजट भाषण के भारी–भरकम शब्दों पर ग़ौर किया जाए तो भारतीय राज्य और समाज के कटु यथार्थ का ही चित्र उभर कर आता है। यह बजट एक ऐसी सोच और जीवन दृष्टि को प्रतिबिंबित करता है जो नागरिक उड्डयन, दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी, आणविक शक्ति, परिवार नियोजन, पेट्रोलियम उत्पादों आदि पर खुले हाथों से खर्च करता है। इसके विपरीत लघु उद्योग, पशुपालन और डेयरी, खाद्य प्रसंस्करण, भूमि संसाधन, पेयजल, आदिवासी विकास आदि मदों पर कम योजना–खर्च की व्यवस्था करता है।

चुनौतियां एवं कसौटियां

नब्बे के दशक में भारतीय विनिमय संकट की वजह से जो संबंध अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ बने उसने केंद्रीय सरकारों के बजटों को एक खास तरह के भूमंडलीकरण के चौखटे में बांध दिया है। क्या भारत इस चौखटे से बाहर निकल पाएगा ? क्या भारत के लिए इस चौखटे के भीतर अपनी जगह और स्थिति बदलना संभव है ? और क्या ऐसा करने से हमारी स्थिति लाभदायक होगी ? यदि हाँ, तो किन तबकों के लिए ? जबकि देश के करोड़ों निवासी राजनीतिक नागरिकता और वोट देने के ताकत के बावजूद आर्थिक अधिकारों से रिक्त हैं। क्या हमारी अर्थव्यवस्था में फलती–फूलती बाहरी हस्तियाँ राजनीतिक स्तर पर नागरिक न होने के बावजूद काफी सशक्त आर्थिक अधिकार हासिल कर चुकी है ?

इस नज़रिये से देखने पर उन मुद्दों या कसौटियों का चयन आसान हो जाता है जिनके आधार पर नये वित्त वर्ष के बजट के नतीजों के बारे में अनुमान लगाए जा सकते हैं। देश का संभ्रांत तबका मुख्य रूप से राष्ट्रीय आय की बढ़त में अपने मुनाफे और भावी निवेश के अवसरों की कसौटी पर बजट को परखते हैं। दूसरी तरफ देश का वंचित बहुसंख्यक वर्ग अपनी रोजी–रोटी का जुगाड़, कीमतों की बढ़ती रफ्तार और कम होती सरकारी सेवाओं में भर्ती का इंतज़ार करते हैं।

बजट 2005–06 में आर्थिक बढ़त के साथ–साथ सामाजिक न्याय की चर्चा तो की गई है पर इसमें गैर–बराबरी कम करना नहीं, बल्कि अनिश्चित आमदनी वाले तबकों को गरीबी रेखा से थोड़ा ऊपर उठा कर यानी उनके जीवन स्तर में मामूली सुधार कर उन्हें ज़िंदा रहने के स्तर तक ही रखना है। इस उद्देश्य को आंशिक समता ही कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया में संपन्न लोगों की आमदनी, संपत्ति और प्रभाव कम करने की बात तो दूर बल्कि उसे अबाध रूप से बढ़ाते रहने के अवसर और संसाधन दोनों ही बढ़ाने की सिफारिशें बजट 2005–06 में की गई है।

यदि पिछली शताब्दी के मध्य में भूमि–सुधारों के प्रभावी ढंग से लागू करने के साथ रोज़गार गारंटी कार्यक्रम को शुरू किया जाता तो आज भारत गरीबी से मुक्त होकर एक समतामूलक और संपन्न देश होता। मगर संसाधन नहीं उगाहने के कारण आम आदमी की बदहाली और शक्तिहीनता और भी

बढ़ी है। साथ ही निजी क्षेत्र को सही दिशा में चलाने की सरकार की क्षमता भी लगभग समाप्त हो गयी है। देश में आंतरिक बज़ट सिकुड़ा हुआ है और इसपर से आयात छूट तथा तटकर में कमी के कारण इसका अच्छा ख़ास भाग विदेशी कंपनियों के खाते में चला जाता है। नतीजा उद्योग भी टिकाऊ और संतुलित रूप में बढ़त हासिल नहीं कर पाते है।

नतीजतन अर्थव्यवस्था विभिन्न किस्म की रुकावटों, अंर्तविरोधों और अधिकतर लोगों के हाशिये पर रहने की मजबूरी का शिकार बनी हुई है। इस साल के बजट में अनेक लुभावने शब्दों के पीछे एक जनोन्मुखी सोच का अभाव साफ झलकता है। मध्य और उच्च आय वर्ग को विभिन्न तरीकों से संतुष्ट करके उनसे सस्ती और सतही वाहवाही लूटना और शेयर बाज़ार में उछाल लाना एक बात है मगर देश की आम जनता को आर्थिक रूप से संपन्न बनाना दूसरी बात है। ज़ाहिर है, कई कारणों से आज दो विपरीत दिशाओं में एक साथ आगे बढ़ने का नाटक खेला जा रहा है। एक दिशा के प्रति विचारात्मक और ठोस स्वार्थपरक लगाव है तो दूसरी दिशा एक रस्मी–राजनैतिक मजबूरी। साफ है किसका पलड़ा भारी है।

दो चेहरे अटल बिहारी वाजपेयी के

भा.ज.पा.–एन.डी.ए. की सरकार के दौरान मीडिया और प्रेस ने वाजपेयी को हमेशा से भाजपा के उदारवादी चेहरे के रूप में पेश किया और ये बताने की कोशिश की कि वाजपेयी आरएसएस की विचारधारा से उतने प्रभावित नहीं हैं जितने कि अडवाणी। नीचे दी गयी संकलित मिसालों से साबित हो जायेगा कि वाजपेयी हमेशा से दो चेहरे रखते थे। अपने बयानों को हमेशा बदलते रहते थे और आर.एस.एस. की विचारधारा से पूरी तरह प्रतिबद्ध थे।

स्वयंसेवक

'मैं बचपन से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़ा हुआ हूँ' ये कहा था पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संसद में 26 अप्रैल 2005 को। वाजपेयी का ये बयान अब पार्लियामेन्ट की अधिकृत बहसों का हिस्सा है। वाजपेयी ने सितम्बर 2000 में भी अमेरिका में स.रा.सं. के दौरे के दौरान अमेरिका में विहिप के मंच से उन अधूरे सपनों की बात की थी जो पूरे नहीं हो सकते क्योंकि भाजपा के पास दो तिहाई बहुमत नहीं था। उस वक्त वाजपेयी ने कहा था 'मैं भी एक स्वयंसेवक हूँ।' वाजपेयी ने, अपने प्रधानमंत्रित्व के दौरान हर दशहरे पर आर.एस.एस. के गुरु दक्षिणा पर्व में हिस्सा लिया ये सभी जानते हैं।

अयोध्या

वी.एच.पी. की एक रैली में अप्रैल, 1991 में वाजपेयी ने कहा ''राष्ट्रीय गरिमा को पुर्नप्रस्थापित करने के लिये राम मंदिर का निर्माण ज़रूरी है।''

दिसम्बर 1993 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के अगले दिन कहा 'बाबरी मस्जिद के विध्वंस का दिन मेरे जीवन का सबसे कष्टदायी दिन है।

अगस्त 21, 1999 में तिरुवनन्तपुरम में एक चुनाव रैली में कहा 'अयोध्या का मुद्दा आज भी भाजपा के चुनावी घोषणापत्र का अहम हिस्सा है।

दिसम्बर 6/7, 2002 को पत्रकारों से बात करते हुए कहा 'अयोध्या का एजेंडा अभी भी अधूरा है। रामजन्म भूमि आंदोलन राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति है जिनको पूरा करना अभी बाकी है।

दिसम्बर 10/19, 2000 को पार्लियामेन्ट में कहा 'मैने कभी भी नहीं कहा कि बाबरी मस्जिद विध्वंस की जगह पर राम मंदिर बनाया जाये।'

जॉर्ज फर्नांडिस पर

मार्च 2001 में तहलका एक्सपोज़े के बाद जॉर्ज के राजीनामे पर कहा कि 'जॉर्ज का राजीनामा, कानून में हमारी प्रतिबद्धता की अभिव्यक्ति है।'

अक्टूबर 2001 में एक सवाल के जवाब में कि तहलका

शेष पृष्ठ 12 पर.....

isd **इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**
फ्लैट नम्बर–110, नम्बरदार हाउस,
62–ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका
नई दिल्ली–110067
टेलीफैक्स : 011–26177904
ईमेल : <notowar@rediffmail.com>

केवल सीमित वितरण के लिए